UNIVERSAL
LIBRARY

OU_182226

UNIVERSAL
LIBRARY

पात्र —

सन्तोष

विनोद

विलास

विवेक

शान्तिदेव

दम्भ

दुर्वृत्त

क्रूर

वृद्ध, युवा, बालक, नागरिक, सैनिक, आगन्तुक, द्वीपवासी, शिकारी, बन्दी आदि ।

पात्रियाँ—

कामना

लीला

लालसा

करुणा

प्रमदा

वनलक्ष्मी

महत्त्वाकांक्षा

माता, बालिका, स्त्रियाँ आदि ।

हिरण्मयेन पात्रेण सत्यस्यापिहितं मुखम् ।

—ईशोपनिषत्

नैव राज्यं न राजासीन्नचदंडो न दंडिकः ।
धर्म्मेणैव प्रजाः सर्व्वा रक्षन्तिस्म परस्परम् ॥
पाल्यमानास्तथाऽन्योन्यं नरा धर्मेण भारत ।
दैन्यं परमुपाजग्मु स्ततस्तान् मोह आविशत् ॥

—महाभारत

कामना

पहिला अंक

पहिला दृश्य

स्थान—फूलों का द्वीप, समुद्र का किनारा

(वृक्ष की छाया में लेटी हुई कामना)

कामना—उषा के अपांग में जागरण की लाली है। दक्षिण-पवन शुभ्र मेघमाला का अंचल हटाने लगा। पृथ्वी के प्रांगण में प्रभात टहल रहा है। विशाल जलराशि के शीतल अंक से लिपटकर आया हुआ पवन इस द्वीप के निवासियों को कोई दूसरा संदेश नहीं, केवल शांति का निरंतर संगीत सुनाया करता है। सन्तोष! हृदय के समीप होने पर भी दूर है, सुन्दर है, केवल आलस के विश्राम का स्वप्न दिखाता है परन्तु अकर्मण्य सन्तोष से मेरी पटेगी? नहीं! इस समुद्र में इतना हाहाकार क्यों है? उँह, ये कोमल पत्ते तो बहुत शीघ्र तितर-बितर हो जाते हैं। (बिछे हुए पत्तों को बैठकर ठीक करती है) यह लो, इन डालों से छनकर आई हुई किरणें इस समय ठीक मेरी आँखों पर पड़ेंगी। अब दूसरा स्थान ठीक करूँ, बिछावन छाया में करूँ। (पत्तों को दूसरी ओर बटोरती है) घड़ी-भर चैन से बैठने में भी झंझट है।

(दो-चार फूल वृक्ष के चू पड़ते हैं—व्यस्त होकर वृक्ष की ओर सरोष देखने लगती है)

(तीन स्त्रियों का कलसी लिये हुए प्रवेश)

१—क्यों बिगड़ रही हो कामना?

२—किस पर क्रोध है कामना ?

३—कितनी देर से यहाँ हो कामना ?

कामना—(स्वगत) क्यों उत्तर दूँ ? सिर खाने के लिए यहाँ भी सब पहुँचीं !

(मुँह फिरा लेती है और बोलती नहीं)

१—क्यों कामना, क्या स्वस्थ नहीं हो ?

२—आहा ! बेचारी कुम्हला गई है !

३—धूप में क्यों देर से बैठी है। चल—

कामना—मैं नहीं चाहती कि तुम लोग मुझे तंग करो। मैं अभी यहीं ठहरूँगी।

२—दुलारी कामना, तू क्यों अप्रसन्न है ?

३—प्यारी कामना, तू क्यों नहीं घर चलती ?

१—काम जो करना होगा ! (सँभलकर) अच्छा कामना, जब तक तेरा मन ठीक नहीं है, तेरा काम मैं कर दिया करूँगी।

२—तेरा कपास मैं ओट दिया करूँगी।

३—सूत मैं कात लिया करूँगी।

१—बुनना और पीने का जल भरना इत्यादि मैं कर दूँगी। तू अपना मन स्वस्थ कर, चित्त को चैन दे। कामना, तेरी-सी लड़की तो इस द्वीप-भर में कोई नहीं है।

कामना—क्या मैं रोगी हूँ जो तुम लोग ऐसा कह रही हो ? मैं किसी का उपकार नहीं चाहती। तुम सब जाओ, मैं थोड़ी देर में आती हूँ।

(तीनों जाती हैं, कामना उठकर टहलती है)

कामना—ये मुरझाये हुए फूल, उँह—कलियाँ चुनो, उन्हे गूँथो और सजाओ, तब कहीं पहनो। लो, इन्हें रूठने में भी देर नहीं लगती। जब देखो, सिर झुका लेते हैं; सुगंध और रुचि के बदले इनमें एक दबी हुई गर्म साँस निकलने लगती है। (हार तोड़कर फेंकती हुई और कुछ कहा चाहती है। दो पुरुषों को आते देख चुप हो जाती है। वृक्ष की ओट में चली जाती है। एक हल और दूसरा फावड़ा लिये आता है)

सन्तोष—भाई, आज धूप मालूम भी नहीं हुई।

विनोद—हमें तो प्यास लग रही है। अभी तो दिन भी नहीं चढ़ा।

सन्तोष—थोड़ी देर छाँह में बैठ जायँ—बातें करें।

विनोद—काम तो हम लोगों का हो चुका, अब करना ही क्या है।

सन्तोष—अभी देव-परिवार के लिए जो नई भूमि तोड़ी जा रही है, उसमें सहायता के लिए चलना होगा।

विनोद—अपने खेतों में बहुत अच्छी उन्नति है। अन्न बहुत बच रहेगा! उन लोगों को आवश्यकता होगी, तो दूँगा।

सन्तोष—अरे, साल में बहुत सार्वजनिक काम आ पड़ते हैं, तो उनके लिए संग्रहालय में भी तो रखना चाहिये।

विनोद—हाँ जी, ठीक कहा।

(समुद्र की ओर देखता है)

सन्तोष—क्यों जी, इसके उस पार क्या है?

विनोद—यही नहीं समझ में आता कि वह पार है या नहीं।

सन्तोष—ओह! जहाँ तक देखता हूँ, अखंड जलराशि।

विनोद—क्या कभी इसमें चलकर देखने की इच्छा होती है।

सन्तोष—इच्छा तो होती है, पर लौटकर न आने के संदेह से साहस नहीं होता। ये हरे-भरे खेत, छोटी-छोटी पहाड़ियों से ढुलकते—मचलते हुए झरने, फूलों से लदे हुए वृक्षों की पंक्ति, भोली गउओं और उनके प्यारे बच्चों के झुंड; इस बीहड़, पागल और कुछ न समझने वाले उन्मत्त समुद्र में कहाँ मिलेंगे। ऐसी धवल धूप, ऐसी तारों से जगमगाती रात वहाँ होगी ?

विनोद—मुझे तो विश्वास है कि कदापि न होगी।

सन्तोष—तब जाने दो, उसकी चर्चा व्यर्थ है। क्यों जी, आज उपासना में वह कामना नहीं दिखाई पड़ी।

विनोद—क्या तुम उससे ब्याह किया चाहते हो ?

सन्तोष—उसकी बातें, उसकी भाव-भंगियाँ कुछ समझ में नहीं आतीं। मैं तो उससे अलग रहा चाहता हूँ।

विनोद—मेरी गृहस्थी तो ब्याह के बिना अधूरी जान पड़ती है। मैं तो लीला की सरलता पर प्रसन्न हूँ।

सन्तोष—तुम जानो। अच्छा होता यदि तुम उसी से ब्याह कर लेते ?

विनोद—और तुम।

सन्तोष—मैं सन्तुष्ट हूँ—मुझे ब्याह की आवश्यकता नहीं।

विनोद—अच्छी बात है। चलो, अब घर चलें।

(दोनों जाते हैं। कामना आती है)

कामना—हाँ, तुम हिचकते हो, और मैं तुमसे घृणा (जीभ दबाती है)। हैं यह क्या ? इसके क्या अर्थ ? मैं क्या इस देश की नहीं हूँ।

क्या मुझमें कोई दूसरी शक्ति है, जो मुझे इनसे भिन्न रक्खा चाहती है। कुछ मैं ही नहीं, ये लोग भी तो मुझको इसी दृष्टि से देखते हैं।

(लीला का प्रवेश)

लीला—बहन, क्या अभी घर न चलोगी ?

कामना—तू भी आ गई ?

लीला—क्यों न आती ?

कामना—आती, पर मुझसे यह प्रश्न क्यों करती है ?

लीला—बहन, तू कैसी होती जा रही है। तेरा चरखा चुपचाप मन मारे बैठा है। तेरी कलसी खाली पड़ी है। तेरा बुना हुआ कपड़ा अधूरा पड़ा है। तेरी—

कामना—मेरा कुछ नहीं है, तू जा। मैं चुप रहा चाहती हूँ; मेरा हृदय रिक्त है। मैं अपूर्ण हूँ।

लीला—बहन, मैंने कुछ नहीं समझा।

कामना—तू कुछ न समझ, बस, केवल चली जा।

(लीला सिर झुकाकर चली जाती है)

—मैं क्या चाहती हूँ ? जो कुछ प्राप्त है, इससे भी महान्। वह चाहे कोई वस्तु हो। हृदय को कोई करो रहा है। कुछ आकांक्षा है; पर क्या है ? इसका किसी को विवरण नहीं देना चाहती। केवल वह पूर्ण हो, और वहाँ तक, जहाँ तक कि उसकी सीमा हो। बस—

(दूर पर वंशी की ध्वनि। कामना इधर-उधर चौंककर देखने लगती है। समुद्र में एक छोटी-सी नाव आती दिखाई पड़ती है। एक युवक बैठा डाँड़ चला रहा है। कामना आश्चर्य से देखती है। नाव तीर पर आकर लगती है)

कामना

—हैं, यह कौन! मैं क्यों झुकी जा रही हूँ? और, सिर पर इसके क्या चमक रहा है, जो इसे बड़ा प्रभावशाली बनाये है। इसका व्यक्तित्व ऐसा है कि मैं इसके सामने अपने को तुच्छ बना दूँ, और अपने को समर्पित कर दूँ।

(कुछ सोचती है। युवक स्थिर दृष्टि से उसकी ओर देखता हुआ बाँसुरी बजाता है। कामना उठती और फूल इकट्ठे करती है। अकस्मात् उसके ऊपर बिखेर देती है। युवक पैर उठाता है कि नीचे उतरे। कामना उसको हाथ पकड़ कर नीचे ले आती है। युवक अपना स्वर्ण-पट्ट खोलकर युवती कामना के सिर पर बाँधता है, और दोनों एक दूसरे को देखते हैं)

[पटाक्षेप]

दूसरा दृश्य

स्थान—वृक्ष-कुंज

(एक परिवार बैठा बातचीत कर रहा है)

बालिका—मा, कोई कहानी सुना।

बालक—नहीं मा, तू बहन से कह दे, वह मेरे साथ दौड़े।

माता—थोड़ा-सा बुनना और है। मैं कहानी भी सुनाऊँगी, और तुझे दौड़ाऊँगी भी। आज तूने कम खाया; क्या भूख नहीं थी?

बालिका—मा, आज यह दौड़ न सका, इसी से—

माता—तो तूने इसे क्यों नहीं खेल खिलाया?

बालक—मा, आज वहाँ लड़कों में कामना नहीं आई। इससे बहुत कम खेल-कूद हुआ।

(एक स्त्री का प्रवेश)

स्त्री—अजी कहाँ हो बहन ! कुछ सुना ?

माता—क्यों बहन, क्या है ? आओ, बैठो।

स्त्री—अरे आज तो एक नई बात हुई है।

माता—क्या ?

स्त्री—समुद्र के उस पार से एक युवक आया है।

माता—सपना तो नहीं देख रही है।

स्त्री—क्या ! मैं अभी देखती आ रही हूँ।

माता—कहाँ है। वह कहाँ बैठा है ?

स्त्री—कामना के घर में। उसी के साथ तो वह द्वीप में आया है।

माता—वह उसे क्यों ले आई ? क्या किसी ने रोका नहीं ? उपासना-मंदिर से क्या आदेश मिला कि वह नवीन मनुष्य इस देश में पैर रखने का अधिकारी हुआ, क्योंकि यह एक नई घटना है।

स्त्री—आज-कल तो उपासना का नेतृत्व उसी कामना के हाथ में है, तब दूसरा कौन आदेश देगा ?

बालक—वह कैसा है मा ?

बालिका—क्या हमीं लोगों के-जैसा है ?

स्त्री—और तो सब कुछ हमीं लोगों का-सा है। केवल एक चमकीली वस्तु उसके सिर पर थी। कामना कहती है, अब उसने वह मुझे दे दी है। उसे सिर में बाँधकर कामना बड़ी इठलाती हुई सब से बातें कर रही है।

(एक किशोरी बालिका का प्रवेश)

किशोरी—सब लोग चलो, आगंतुक के लिए एक घर की आवश्यकता है। कामना ने सहायता के लिये बुलाया है।

(सब जाते हैं। लीला और सन्तोष का प्रवेश)

लीला—हाँ प्रियतम ! इस पूर्णिमा को हम लोग एक हो जायँगे।

सन्तोष—परंतु तुम्हारी सखी तो—

लीला—अरे सुना है, उसने भी वरण किया है।

सन्तोष—किसे ? वह तो इससे अलग रहा चाहती है !

लीला—कोई समुद्र-पार से आया है।

सन्तोष—हाँ, आने का समाचार तो मैंने भी सुना है; पर उस नवागंतुक से क्या इस देश की कुमारी ब्याह करेगी ?

लीला—क्यों, क्या ऐसा नहीं हो सकता ?

सन्तोष—अभी तक तो नहीं सुना; क्या किसी पुरानी कहानी में तुमने ऐसा सुना है ?

लीला—परंतु कोई आया भी तो नहीं था।

सन्तोष—यह तो ठीक नहीं है। सुना है, उसका नाम विलास है।

लीला—ठीक तो नहीं है; पर होगा यही।

सन्तोष—यदि विरोध हुआ, तो तुम क्या करोगी ?

लीला—मेरी सखी है। आज तक तो इस द्वीप में विरोध कभी नहीं हुआ !

सन्तोष—तो मैं विचार करूँगा। तुम्हारे पथ पर मैं चल सकूँगा ?

लीला—(आश्चर्य से) क्या इसमें भी सन्देह है ?

सन्तोष—हाँ लीला—

लीला—नहीं-नहीं, ऐसा न कहो—

(दोनों जाते हैं)

तीसरा दृश्य

स्थान—कुंजवन

(कामना के साथ बैठा हुआ विलास)

कामना—प्रिय, अब तो तुम हम लोगों की बातें अच्छी तरह समझने लगे। जो लोग मिलने आते हैं, उनसे बातें भी कर लेते हो।

विलास—हाँ, अब तो कोई बाधा नहीं होती प्रिये! तुम लोग कुछ गाती नहीं हो क्या?

कामना—गाती क्यों नहीं हैं, पर तुम्हें हमारे गाने अच्छे लगेंगे?

विलास—क्यों नहीं, सुनूँ तो।

(कामना गाती है और विलास बाँसुरी बजाता है)

सघन वन-वल्लरियों के नीचे,
उषा और सन्ध्या-किरनों ने तार बीन के खींचे।
हरे हुए वे गान जिन्हें मैंने आँसू से सींचे।
स्फुट हो उठी मूक कविता फिर कितनों ने दृग मीचे।
स्मृति-सागर में पलक-चुलुक से बनता नहीं उलीचे।
मानस-तरी भरी करुना-जल होती ऊपर-नीचे।

विलास—कामना! कामना! तुम लोगों का ऐसा मधुर गान है! मैंने तो ऐसा गान कभी नहीं सुना!

कामना—(आश्चर्य) क्या ऐसा गान कहीं नहीं होता ?

विलास—इस लोक में तो नहीं।

कामना—तब तो बड़ी अच्छी बात हुई।

विलास—क्यों ?

कामना—मैं नित्य सुनाया करूँगी।

विलास—क्यों प्रिये, तुम्हारे देश के लोग मुझसे अप्रसन्न तो नहीं हैं ? क्या तुम—

कामना—इसमें अप्रसन्न होने की तो कोई बात नहीं है। यह तो इस द्वीप का नियम है कि प्रत्येक स्त्री-पुरुष स्वतंत्रता से जीवन-भर के लिए अपना साथी चुन ले।

विलास—क्या तुम्हें किसी का डर नहीं है ?

कामना—(अल्हड़पन से) डर ! डर क्या है ?

विलास—क्या तुम्हारे ऊपर किसी की आज्ञा नहीं है ?

कामना—हाँ है, नियमों की। वह तुम्हारे लिए टूट नहीं रहा है। और, इस समय तो मैं ही इस द्वीप-भर की उपासना का नेतृत्व कर रही हूँ। मेरे लिए कुछ विशेष स्वतंत्रता है।

विलास—क्या ऐसा सदैव रहेगा ?

कामना—(चौंककर) क्या मेरे जीवन-भर ? नहीं, ऐसा तो नहीं है, और न हो सकता है।

विलास—(गम्भीरता से) क्यों नहीं हो सकता ? मेरे देश में तो बराबर होता है।

कामना—(प्रसन्नता और घबराहट से) तो क्या मेरे लिए यहाँ भी वह सम्भव है ?

विलास—उद्योग करने से होगा ।

कामना—चलो, उस शिलाखंड पर अच्छी छाया है, वहीं बैठें ।

(हाथ पकड़ कर उठाती है । दोनों वहीं जाकर बैठते हैं)

विलास—कामना, तुम लोगों की कोई कहानी है ?

कामना—है क्यों नहीं ।

विलास—कुछ सुनाओ । इस द्वीप की कथा मैं सुनना चाहता हूँ ।

कामना—(आकाश की ओर दिखाकर) हम लोग बड़ी दूर से आये हैं । जब विलोड़ित जलराशि स्थिर होने पर यह द्वीप ऊपर आया, उसी समय हम लोग शीतल तारिकाओं की किरणों की डोरी के सहारे नीचे उतारे गये । इस द्वीप में अब तक तारा की ही संतानें बसती हैं ।

विलास—क्यों यह जाति उतारी गई ?

कामना—वहाँ चुपचाप बैठने से यह संतुष्ट नहीं थी । पिता ने खेल के लिए यहाँ भेज दिया । इन तारा की संतानों का खेल एक बड़े छिद्र से पिता देखा करते हैं ।

विलास—कौन-सा छिद्र ?

कामना—वही, जिससे दिन हो जाता है । पिता का असीम प्रकाश उससे दिखलाई पड़ता है; क्योंकि वह केवल आलोक है । वही रात को झँझरीदार परदा खींच लेता है, तब कहीं-कहीं से तारे चमकते हैं । यह सब उसी लोक का प्रकाश है ।

विलास—अच्छा, तो वहाँ जाते कैसे हैं ?

कामना—पिता की आज्ञा से, कभी छोटी, कभी बड़ी एक राह खुलती है, और किसी दिन बिलकुल नहीं, उसे चंद्रमा कहते हैं। अपने शीतल पथ से थकी हुई तारा की संतान अपने खेल समाप्त कर उसी से चली जाती है।

विलास—(आश्चर्य से) भला तारों की राह से ये क्यों भेजे जाते हैं?

कामना—यह खिलवाड़ी और मचलने वाली संतान थका देने के लिए भेजी जाती है। हमारे अत्यंत प्राचीन आदेशों में तो यही मिलता है, ऐसा ही हम लोग जानते हैं।

(दूर एक बड़ा सुरीला पक्षी बोलता है। कामना घुटने टेक कर सिर झुका लेती और चुपचाप उसका शब्द सुनती है)

विलास—कामना! यह क्या कर रही हो?

कामना—(उठकर) पिता का संदेश सुन रही थी। मैं उपासना-गृह में जाती हूँ, क्योंकि कोई नवीन घटना होने वाली है। तुम चाहे ठहरकर आना।

(चली जाती है)

विलास—आश्चर्य! कैसी प्रकृति से मिली हुई यह जाति है! महत्त्व और आकांक्षा का, अभाव और संघर्ष का लेश भी नहीं है। जैसे शैल-निवासिनी सरिता, पथ के विषम ढोकों को, विघ्न-बाधाओं को भी अपने सम और सरल प्रवाह तथा तरल गति से ढँकती हुई बहती रहती है, उसी प्रकार यह जाति, जीवन की वक्र रेखाओं को सीधी करती हुई, अस्तित्व का उपभोग हँसती हुई कर लेती है। परन्तु ऐसे—(चुप होकर सोचने लगता है) उहूँ, करना होगा। ऐसी सीधी जाति पर भी यदि

शासन न किया, तो पुरुषार्थ ही क्या ? इनमें प्रभाव फैलाकर अपने नये व्यक्तिगत महत्ता के प्रलोभन वाले विचारों का प्रचार करना होगा। जान पड़ता है कि किसी गुप्त संकेत पर ये लोग प्राचीन प्रथा के अनुसार, केवल उपासना के लिए किसी के नेतृत्व का अनुसरण करते हैं। सम्भवतः जब तक लोग उसकी कोई अयोग्यता न देख लेंगे, तब तक उसी को नेता मानते रहेंगे। भाग्य से आज-कल कामना ही है; परन्तु मेरे कारण शीघ्र इसको अपने पद से हटना होगा। तो जब तक कामना इस पद पर है, उसी बीच में अपना काम कर लेना होगा।

(दूर पर एक स्त्री की छाया देख पड़ती है)

छाया—मूर्ख ! अपने देश की दरिद्रता से विताड़ित और अपने कुकर्मों से निर्वासित साहसी ! तू राजा बना चाहता है ? तो स्मरण रख, तुझे इस जाति को अपराधी बनाना होगा। जो जाति अपराध और पापों से पतित नहीं होती, वह विदेशी तो क्या, किसी अपने सजातीय शासक की भी आज्ञाओं का बोझ वहन नहीं करती। और, समझ ले कि बिना स्वर्ण और मदिरा का प्रचार किये तू इस पवित्र और भोली-भाली जाति को पतित नहीं बना सकता।

विलास—कौन, मेरी महत्त्वाकांक्षा ! तुझे धन्यवाद। ठीक समय पर पहुँची।

(विलास जाता है। छाया अदृश्य हो जाती है)

(एक ओर से कामना, दूसरी ओर से विनोद का प्रवेश)

कामना—विनोद ! तुम इधर लीला से मिले थे ? वह तुम्हें एक दिन खोज रही थी।

कामना

विनोद—सन्तोष के कारण मैं उससे नहीं मिलता। आज उसका ब्याह होने वाला था न !

कामना—वह सन्तोष से ब्याह न करेगी ? चलो, फूलों का मुकुट पहनाकर तुम्हें ले चलूँ।

विनोद—मैं ?

कामना—हाँ !

चौथा दृश्य

स्थान—लीला का कुटीर

(फूल-मंडप में लीला)

लीला—आज मिलन-रात्रि है। आज दो अधूरे मिलेंगे, एक पूरा होगा। मधुर जीवन-स्रोत को संतोष की शीतल छाया में बहा ले जाना आज से हमारा कर्तव्य होना चाहिये। परन्तु मुझे वैसी आशा नहीं। मेरा हृदय व्याकुल है, चंचल है, लालायित है, मेरा सब कुछ अपूर्ण है केवल उसी चमकीली वस्तु के लिये। मेरी सखी कामना ! आह, मुझे भी एक वैसी ही मिलनी चाहिये।

(वन-लक्ष्मी का प्रवेश)

लीला—तुम कौन ?

वन-लक्ष्मी—मैं वन-लक्ष्मी हूँ।

लीला—क्यों आई हो ?

वन-लक्ष्मी—इस द्वीप के निवासियों में जब ब्याह होता है, तब मैं आशीर्वाद देने आती हूँ। परन्तु किसी के सामने नहीं।

लीला—फिर मेरे लिये ऐसी विशेषता क्यों ?

वन-लक्ष्मी—अभिशाप देने के लिये।

लीला—हम 'तारा की संतान' हैं। हमें किसी के अभिशाप से क्या सम्बन्ध। और, मैंने किया ही क्या है जो तुम अभिशाप कहकर चिल्लाती हो। इस द्वीप में आज तक किसी को अभिशाप नहीं मिला, तो मुझे ही क्यों मिले ?

वन-लक्ष्मी—मैंने भूल की। अभिशाप तो तुम स्वयं इस द्वीप को दे रही हो।

लीला—जो बात मैं समझती नहीं, उसी के लिए क्यों मुझे—

वन-लक्ष्मी—जो वस्तु कामना को अकस्मात् मिली है, उसी के लिए तुम ईर्षा कर रही हो, वैसी ही तुम भी चाहती हो।

लीला—तो ऐसा चाहना क्या कोई अभिशाप, ईर्षा, या और क्या-क्या तुम कह रही हो, वही है ?

वन-लक्ष्मी—आज तक इस द्वीप के लोग 'यथा-लाभ-संतुष्ट' रहते थे, कोई किसी का मत्सर नहीं करता था। परन्तु इस विष का—

लीला—बस करो, मैं तुम्हारे अभिशाप, ईर्षा और विष को नहीं समझ सकी ! यदि मैं किसी अच्छी वस्तु को प्राप्त करने की चेष्टा करूँ, तो उसकी गिनती तुम अपने इन्हीं शब्दों में करोगी, जिन्हें किसी ने सुना नहीं था। अभिशाप, मत्सर, ईर्षा और विष।

वन-लक्ष्मी—अच्छी वस्तु तो उतनी ही है, जितनी की स्वाभाविक आवश्यकता है। तुम क्यों व्यर्थ अभावों की सृष्टि करके जीवन को जटिल बना रही हो ? जिस प्रकार ज्वालामुखियाँ पृथ्वी के नीचे दबा

रक्खी गई हैं, और शीतल स्रोत पृथ्वी के वक्षस्थल पर बहा दिये गये हैं, उसी प्रकार ये सब अभाव 'तारा की संतानों' के कल्याण के लिये गाड़ दिये गये हैं। यह ज्वाला सोने के रूप में सब के हाथों में खेलती और मदिरा के शीतल आवरण से कलेजे में उतर जाती है।

लीला—मदिरा! क्या कहा?

वन-लक्ष्मी—हाँ-हाँ, मदिरा, जो तुम्हारे उस पात्र में रक्खी है।

(पात्र की ओर संकेत करती है)

लीला—क्या इसे कहती हो? (पात्र उठा लेती है) इसे तो सखी कामना ने ब्याह के उपलक्ष में भेजा है। और सोना क्या?

वन-लक्ष्मी—वही, जिसके लिये लालायित हो।

लीला—तुम वन-लक्ष्मी हो, तभी—

वन-लक्ष्मी—क्या मैं भी उस चमकीली वस्तु के लिये शीतल हृदय में जलन उत्पन्न करूँ?

लीला—जलन तो है ही। तुम्हारे पास नहीं है, इसीलिए मुझे भी उससे वंचित रखना चाहती हो। कामना के पास है, और मैं उसे पाने का प्रयास कर रही हूँ, इसे ही तो तुमने कहा था, मत्सर! और मैं पा जाऊँगी उद्योग करके, इसलिये तुम निषेध करती हो। क्या यह मत्सर या तुम्हारे शीतल हृदय की जलन नहीं है?

वन-लक्ष्मी—लीला! लीला! सावधान हो, हमारे द्वीप में लोहे का उपयोग सृष्टि की रक्षा के लिए है। उसे संहार के लिए मत बना। जो वस्तु खेती और हिंस्र पशुओं से सरल जीवों की रक्षा का साधन है, उसे नरक के हाथ, हिंसा की उँगलियाँ न बना दे। कामना को उस

विदेशी युवक के साथ महार्णव में विसर्जन कर दे। उसे दूसरे देश में चले जाने के लिए भी कह दे ; परंतु—

लीला—वन-लक्ष्मी हो ? क्या तुम ऐसा निष्ठुर निर्देश करती हो कि मैं अपनी सखी को—

वन-लक्ष्मी—हाँ ! हाँ ! उस अपनी सखी से दूर रह ! केवल तू ही उस अग्नि का ईंधन बनकर विनाश न फैला। महार्णव से मिलती हुई तरंगिणी के जल में चुटकी लेता हुआ, शीतल और सुगंधित पवन इस देश में बहने दे। इस देश के थके कृषकों को विनोद-पूर्ण बनाने के लिए, प्रत्येक पथिक पर, कल्याण के सदृश, यहाँ के वृक्षों को फूल बरसाने दे। आग, लोहे और रक्त की वर्षा की प्रस्तावना न कर। इस विश्वम्भरा को, इस जननी को, धातु निकालकर, खोखली और निर्बल बनाने का समारम्भ होने से रोक। मेरी प्यारी लीला ! मान जा। कहे जाती हूँ, जिस दिन तूने उस चमकीली वस्तु के लिए हाथ पसारा, उसी दिन इस देश की दुर्दशा का प्रारम्भ होगा।

(चली जाती है)

लीला—(कुछ देर बाद) आश्चर्य ! आज तक तो वन-लक्ष्मी किसी से नहीं मिली थी। अब मैं क्या करूँ ? चलकर कामना से कहूँ; या उपासना-गृह में ही सबके सामने कहूँ। (सोचती है) नहीं, अलग ही कहना ठीक होगा। तो चलूँ, (रुककर) यह लो, कामना तो स्वयं आ रही है।

(कामना का प्रवेश)

कामना—लीला, सखी, तू कैसी हो रही है ?

लीला—मैं तो तेरे ही पास आ रही थी। बड़े आश्चर्य की बात है।

कामना—आश्चर्य की कई बातें आजकल इस द्वीप में हो रही हैं। पर उनसे क्या? पहले मेरी ही बात सुन ले। मैं विलास के साथ बातें कर रही थी कि पत्तियों का संकेत हुआ। मैं उपासना-गृह में गई। मुझे नियमानुसार यह विदित हुआ कि इस देश पर कोई आपत्ति शीघ्र आया चाहती है। परंतु मैं तनिक भी विचलित न हुई। मैं तो तेरे ब्याह का शृंगार करने आई हूँ। तू कह—

लीला—आज वन-लक्ष्मी मुझसे न-जाने कहाँ-कहाँ की कैसी-कैसी बातें कह गई।

कामना—वन-लक्ष्मी! भला, वह तेरे सामने आई! आश्चर्य! क्या कहा?

लीला—कहा कि कामना के हाथों से देश का विनाश होगा। तू उसका साथ न दे, और उस चमकीली वस्तु की चाह कभी न करना, जैसी कामना के पास है; क्योंकि वह ज्वाला है। और भी न-जाने क्या-क्या कह गई।

कामना—हूँ। तूने क्या कहा?

लीला—मैंने कहा कि वह मेरी सखी है, मैं उसे न छोड़ूँगी। (आलिंगन करती है)

कामना—प्यारी लीला, वह मैं तुझे अवश्य दिलाऊँगी, अधीर न हो। तू जैसे भ्रांत हो गई है। वह पेया, जो मैंने भेजी है, कहाँ है? थोड़ी उसमें से पी ले।

लीला—ओ! उसे तो और भी मना किया है।

कामना—(हँसती हुई पात्र उठाकर) अरे ले भी, अभी थकावट दूर होती है। (लीला और कामना पीती हैं)

लीला—बहन, इसके पीते ही तो मन दूसरा हुआ जाता है।

कामना—बड़ी अच्छी वस्तु है।

लीला—ऐसी पेया तो नहीं पी थी। यहाँ कहाँ से ले आई ?

कामना—एक दिन मैं और विलास, दोनों, नदी के किनारे से बहुत दूर निकल गये। फिर वहाँ प्यास लगी; परंतु नदी तक लौटने में विलम्ब होता। एक तरबूज आधा पड़ा था, उसमें सूर्य की गर्मी से तपा हुआ उसी का रस था। हम दोनों ने आधा-आधा पी लिया। बड़ा आनंद आया। अब उसी रीति से बनाया करती हूँ।

लीला—(मद विह्वल होती है) कामना, तू वन-लक्ष्मी है। वह जो आई थी, मुझे भुलाने आई थी। तू क्या है, सुगंध की लहर है। चँदनी की शीतल चादर है। आः (उठना चाहती है)

कामना—(लीला को बिठाकर) तू बैठ, आज मिलन-रात्रि है। विनोद के आने का समय हो गया।

लीला—विनोद ! कौन ! नहीं कामना ! सन्तोष ! मेरा प्यारा सन्तोष ! तुमने तो ब्याह न करने का निश्चय किया है ?

कामना—कैसी है तू ! वह मेरा निर्वाचित है ! मैं चाहे ब्याह करूँ या नहीं, परन्तु वह तो सुरक्षित रहेगा—समझी लीला ! तेरे लिए तो विनोद ही उपयुक्त है। सन्तोष मुझसे डरता है, तो मैं भी उससे सब को डराऊँगी—विनोद को मैं बुला आई हूँ। वह तेरा परम अनुरक्त है।

(लीला अवाक् होकर देखती है)

(फूलों के मुकुट से सजा हुआ विनोद आता है)

कामना--स्वागत !

लीला—विराजिये।

(सब बैठते हैं)

(कामना दो फूल के हार दोनों को पहनाती और पात्र लेकर दोनों को एक में पिलाती है। पीछे खड़ी होकर दोनों के सिर पर हाथ रखती है। तीनों के मुख पर तीव्र आलोक)

कामना—अखंड मिलन हो !

विनोद—उपासना-गृह में भी तो चलना होगा।

लीला—यह तो नियम है।

कामना—थोड़ी और पी लो, तो चलें। वहाँ सब लोग एकत्र रहेंगे। परंतु देखो, जो मैं कहूँ, वहाँ वही करना।

लीला और विनोद—वही होगा।

(दोनों पात्र खाली करके जाते हैं)

कामना—मेरे भीतर का बाँकपन सीधा हो गया है। मेरा गर्व उसके पैरों में लोटने लगा। वह अतिथि होकर आया, आज स्वामी है। व्योम-शैल से गिरती हुई चंद्रिका की धारा आकाश और पाताल एक कर रही है। आनंद का स्रोत बहने लगा है। इस प्रपात के स्वच्छ कणों से कुहासे के समान सृष्टि में अंधकार-मिश्रित आलोक फैल गया है। अंतःकरण के प्रत्येक कोने से असंतोष-पूर्ण तृप्ति की स्वीकार-सूचनायें मिल रही हैं। विलास ! तुम्हारे दर्शन ने सुख भोगने के नये-नये

आविष्कारों से मस्तिष्क भर दिया है। क्लांति और श्रांति मिलने के लिए जैसे सकल इंद्रियाँ परिश्रम करने लगी हैं—विलास ! (गाती है)

घिरे सघन घन नींद न आई,
निर्दय भी न अभी आया !
चपला ने इस अंधकार में,
क्यों आलोक न दिखलाया ?
बरस चुकीं रस-बूँद सरस हो,
फिर भी यह मन कुम्हलाया !
उमड़ चले आँखों के झरने,
हृदय न शीतल हो पाया !

—चलूँ उपासना-गृह में—(जाती है)

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—उपासना-गृह

(सामने धूनी में जलती हुई अग्नि : बीच में कामना स्वर्ण-पट्ट बाँधे। दोनों ओर द्वीप के नागरिक। सबसे पीछे विलास)

कामना—पिता ! हम सब तेरी संतान हैं। (सब वही कहते हैं)

कामना—हमारी परस्पर की भिन्नता के अवकाश को तू पूर्ण बनाये रख, जिसमें हम सब एक हो रहें।

सब—हम सब एक हो रहें।

कामना—हमारे ज्ञान को इतना विस्तार न दे कि हम सब दूर-दूर हो जाँय। हम सब के समीप रहें।

सब—हम सब के समीप रहें।

कामना—हमारे विचारों को इतना संकुचित न कर दे कि हम अपने ही में सब कुछ समझ लें। सब में तेरी सत्ता का अनुभव हो।

सब—सब में तेरी सत्ता का अनुभव हो। (घुटने टेकते हैं)

कामना—(उठकर) हम लोगों में आज एक नवीन मनुष्य है। वह आप लोगों को पिता का एक संदेश सुनावेगा।

एक वृद्ध—पवित्र पक्षियों के संदेश क्या अब बंद होंगे ?

दूसरा—क्या मनुष्य से हम लोग संदेश सुनेंगे ?

तीसरा—कभी ऐसा नहीं हुआ।

विलास—शांत होकर सुनिये। पवित्र उपासना-गृह में मन को एकाग्र करके, विनम्र होकर; संदेश सुनिये। विरोध न कीजिये।

पहला वृद्ध—इस उपद्रव का अर्थ ? विदेशी युवक, तुम यहाँ क्या किया चाहते हो ? विरोध क्या ?

विनोद—सुनने में बुराई क्या है ?

लीला—हमारे व्याह की उपासना यों उपद्रव में न समाप्त होनी चाहिये। आप लोग सुनते क्यों नहीं ?

कामना—मैं आज्ञा देती हूँ कि अभी उपासना पूर्ण नहीं हुई; इसलिए सब लोग संदेश को सावधान होकर सुनें।

दो-चार वृद्ध—इस उन्मत्त कथा का कहीं अन्त होगा ? कामना !

आज तुम्हें क्या हुआ है ? तुम केवल उपासना का नेतृत्व कर रही हो; आज्ञा कैसी ? वह क्यों मानी जाय ?

कई स्त्री-पुरुष—हम लोगों को यहाँ से चलना चाहिये, और कोई दूसरा व्यक्ति कल से उपासना का नेता होगा।

विलास—अनर्थ न करो, ईश्वर का कोप होगा।

(विलास के संकेत करने पर कामना अग्नि में राल डालती है)

विलास—ईश्वर है, और वह सबके कर्म देखता है। अच्छे कार्यों का पारितोषिक और अपराधों का दंड देता है। वह न्याय करता है; अच्छे को अच्छा और बुरे को बुरा !

विवेक—परन्तु युवक, हम लोग आज तक उसे पिता समझते थे। और, हम लोग कोई अपराध नहीं करते। करते हैं केवल खेल। खेल का कोई दंड नहीं। यह न्याय और अन्याय क्या ? अपराध और अच्छे कर्म क्या हैं, हम लोग नहीं जानते। हम खेलते हैं, और खेल में एक दूसरे के सहायक हैं, इसमें न्याय का कोई कार्य नहीं। पिता अपने बच्चों का खेल देखता है, फिर कोप क्यों ?

विलास—तुम्हारी ज्ञान-सीमा संकुचित होने के कारण यह भ्रम है। तुम लोग पुण्य भी करते हो, और पाप भी।

विवेक—पुण्य क्या ?

विलास—दूसरों की सहायता करना इत्यादि। पाप है दूसरों को कष्ट देना, जो निषिद्ध है।

विवेक—परंतु निषेध तो हमारे यहाँ कोई वस्तु नहीं है। हम वही करते हैं, जो जानते हैं; और जो जानते हैं, वह सब हमारे लिए अच्छी,

बात है। केवल निषेध का घोर नाद करके तुम .पाप क्यों प्रचारित कर रहे हो? वह हमारे लिए अज्ञात बात है। तुम ज्ञान को अपने लिए सुरक्षित रक्खो। यहाँ--

कामना—दिव्य पुरुष से केवल शिक्षा ग्रहण करनी चाहिये।

विनोद—हम आपके आज्ञाकारी हैं। आपके नेतृत्व-काल में अपूर्व वस्तु देखने में आई, और कभी न सुनी हुई बातें जानी गईं। आप धन्य हैं!

एक—हम लोग भी स्वीकार ही करेंगे। तो अब सब लोग जायँ?

विनोद—ब्याह का उपहार ग्रहण कर लीजिये।

कामना—वह ईश्वर की प्रसन्नता है। आप लोगों को उसे लेकर जाना चाहिये।

(विनोद और लीला सब को मदिरा पिलाते हैं)

कामना—है न यह उसकी प्रसन्नता?

दो-चार—अवश्य, यह तो बड़ी अच्छी पेया है।

(सब मोह में शिथिल होते हैं)

—ईश्वर से डरना चाहिये, सदैव सत्कर्म—

एक—नहीं तो वह इसी ज्वाला के समान अपने क्रोध को धधका देगा।

दूसरा—और हम लोगों को दंड देगा।

विवेक—परन्तु प्यारे बच्चो, वह पिता स्नेह करता है, यह हम लोग कैसे भूल जाँय, और उससे डरने लगें?

कामना—तुम्हें प्रमाण मिलेगा कि हम लोगों में अपराध हैं; उन्हीं

अपराधों से हम लोग रोगी होते और उसके बाद इस द्वीप से निकाल दिये जाते हैं। उन अपराधों को हमें धीरे-धीरे छोड़ना होगा।

विवेक—तो फिर सब कर्म केवल अपराध ही हो जायँगे—

और सब—हम लोग उन अपराधों का जानेंगे, और त्याग करेंगे। रोग और निकाले जाने से बचेंगे।

विलास—सब का कल्याण होगा।

(एक दूसरे से आलिंगन करते हुए मद्यपों की-सी प्रसन्नता प्रकट करते हुए जाते हैं)

विवेक—परिवर्तन! वर्षा से धुले हुए आकाश की स्वच्छ चन्द्रिका, तमिस्रा से—कुहू से बदल जायगी। बालकों के-से शुभ्र हृदय छल की मेघमाला से ढँक जायँगे।

(सोचता है)

पिता! पिता! हम डरेंगे, तुमसे काँपेंगे? क्यों? हम अपराधी हैं। नहीं-नहीं, यह क्या अच्छी बात है। यह क्या है? अब खेल समाप्त होने पर तुम्हारी गोद में शीतल पथ से हम न जाने पावेंगे। तुम दंड दोगे। नहीं, नहीं—ओह! न्याय करोगे? भयानक न्याय—क्योंकि हम अपराध करेंगे, और तुम दंड दोगे—अह! उसने कहा कि तुम निर्जीव बनाकर इस द्वीप से निकाल दिये जाते हो, यही प्रमाण है कि तुम अपराधी हो। क्या हम अपराधी हैं? अपराध क्या पदार्थ है? क्षुद्र स्वार्थों से बने हुए कुछ नियमों का भंग करना अपराध होगा। यही न? परन्तु हमारे पास तो कोई नियम ऐसे नहीं थे, जो कभी तोड़े जाते रहे हों। फिर क्यों यह अपराध हम पर लादा जा रहा

है ? पिता ! प्रेममय पिता ! हमारे इस खेल में भी यह कठोरता, यह दंड का अभिशाप लगा दिया गया ! हमारे फूलों के द्वीप में किस निर्दय ने काँटे बिखेर दिये ? किसने हमारा प्रभात का स्वप्न भंग किया ? स्वप्न—आ ! कुदृश्यों से थकी हुई आँखों में चली आ—विश्राम ! आ ! मुझे शीतल अंक में ले !—उँह ! सो जाऊँ । (सोने की चेष्टा करता है । स्वप्न में—स्वर्ग और नरक का दृश्य देखता हुआ अर्द्ध-निद्रित अवस्था में उठ खड़ा होता है)—मैं क्या-क्या कह गया । ये सब अभूतपूर्व बातें कहाँ से हमारे हृदय में उठ रही हैं । परन्तु, नहीं—यह तो प्रत्यक्ष है, दिखलाई पड़ रहा है कि ज्वाला और उसके पहले विष से मिला हुआ धुआँ फैलने लगा है । जलाने वाली, अमृत होकर सुख भोग करने की इच्छा, इस पृथ्वी को स्वर्ग बनाने की कल्पना, इसे अवश्य नरक बनाकर छोड़ेगी । हैं ! नरक और स्वर्ग ! कहाँ हैं ? ये क्यों मेरे हृदय में घुसे पड़ते हैं ? काल्पनिक अत्यंत उत्तमता, सुख-भोग की अनंत कामना, स्वर्गीय इंद्र-धनुष बनकर सामने आ गई है, जिसने वास्तविक जीवन के लिए इस पृथ्वी की दबी हुई ज्वालामुखियों का मुख खोल दिया है । हमारे फूलों के द्वीप के बच्चो ! रोओगे इन कोमल फूलों के लिए, इन शीतल झरनों के लिए । पिता के दुलारे पुत्रो ! तुम अपराधी के समान बेंत-से काँपोगे । तुम गोद में नहीं जाने पाओगे । हा ! मैं क्या करूँ—कहाँ जाऊँ ?

(बड़बड़ाता हुआ जाता है)

छठा दृश्य

स्थान—कामना का मंदिर और नवीन ढंग का उपवन

(कामना और विलास)

विलास—बहुत-से लोग पेया माँगते हैं कामना !

कामना—तो कैसे बनेगी ?

विलास—लीला स्वर्ण-पट्ट के लिये अत्यंत उत्सुक है।

कामना—उसे तो देना ही होगा।

विलास—स्वर्ण तो मैंने एकत्र कर लिया है, अब उसे बनाना है।

कामना—फिर शीघ्रता करो।

विलास—जब तक तुम रानी नहीं हो जातीं, तब तक मैं दूसरे को स्वर्ण-पट्ट नहीं पहनाऊँगा। केवल उपासना में प्रधान बनने से काम न चलेगा। परन्तु रानी बनने में अभी देर है, क्योंकि अपराध अभी प्रकट नहीं है। उसका बीज सब के हृदयों में है।

कामना—फिर क्या होना चाहिये ?

विलास—आज सब को पिलाऊँगा। कुछ स्त्रियाँ भी रहेंगी न ?

कामना—क्यों नहीं।

विलास—कितनी देर में सब एकत्र होंगे ?

कामना—आते ही होंगे। मुझे तो दिखलाओ, तुमने क्या बनाया है, और कैसे बनाया ?

विलास—देखो, परन्तु किसी से कहना मत।

(कामना आश्चर्य से देखती है। पर्दा हटाकर शराब की भट्टी और सुनार

को धौंकनी दिखलाता है। गलाया हुआ बहुत-सा सोना रक्खा है। मंजूषा में से एक कंकण निकालकर कामना को दिखाता है)

लीला--(सहसा प्रवेश करके) सब लोग आ रहे हैं।

(विलास सब बंद कर लेता है, लीला की ओर क्रोध से देखता है। लीला संकुचित हो जाती है)

विलास—जब कह दिया गया कि तुम्हें भी मिलेगा, तब इतनी उतावली क्यों है ?

(विनोद भी आ जाता है)

कामना—विनोद और लीला हमारे अभिन्न हैं प्रिय विलास !

विलास—ईश्वर का यह ऐश्वर्य है, उसका अंग है। जब उसकी इच्छा होगी, तभी मिलेगा। जल्दी का काम नहीं। विनोद ! तुम्हें भी इसकी –

विनोद—मैंने भी बहुत-सी रेत एकट्ठी की है, परंतु बना न सका—मुझे नहीं, लीला को चाहिये।

विलास—(आश्चर्य और क्रोध प्रकट करते हुए) अच्छा, प्रतिज्ञा करो कि कामना जो कहेगी, वही तुम लोग करोगे, आज का रहस्य किसी से न कहोगे।

विनोद और लीला—हम दोनों दास हैं। किसी से न कहेंगे।

कामना—क्या कहा ?

दोनों—दास हैं। आपके दास हैं।

कामना—नहीं, नहीं, तुम इतने दीन होकर इस ज्वाला की भीख मत लो। इस द्वीप के निवासी—

विलास—ठहरो कामना, (विनोद से) तो तुम अपनी बात पर दृढ़ हो ? झूठ तो नहीं बोलते ?

लीला—झूठ क्या ?

विलास—यही कि जो कहते हो, उसे फिर न कर सको।

कामना—ऐसा तो हम लोग कभी नहीं करते। क्यों विनोद !

विलास—मैं तुम से नहीं पूछ रहा हूँ कामना।

विनोद—हाँ-हाँ, वही होगा।

(विलास एक छोटा-सा हार निकालकर लीला को पहनाता है। कामना क्षोभ से देखती है। विलास पर्दा खींचकर खड़ा हुआ मुस्किराता है। सब लोग आ जाते हैं। कामना सब का स्वागत करती है। युवक और युवतियों का झुंड बैठता है)

विलास—आज आप लोग मेरे अतिथि हैं, यदि कोई अपराध हो तो क्षमा कीजियेगा।

एक युवक—अतिथि क्या ?

विलास—यही कि मेरे घर पधारे हैं।

एक युवती—हम लोग तो इसे अपना ही घर समझते हैं।

विनोद—वास्तव में तो घर विलास जी का है।

विलास—ऐसा कहना तो शिष्टाचार-मात्र है। अच्छे लोग तो ऐसा कहते ही हैं।

युवक—क्या इस घर के आप ही सब कुछ हैं ? हम लोग कुछ नहीं ?

कामना—आप लोग जब आ गये हैं, तब तक आप लोग भी हैं, परन्तु विलास जी की आज्ञानुसार।

विलास—(हँसकर) हमारे देश में इसको शिष्टाचार कहते हैं। यद्यपि आप लोगों का इस समय हमारे घर पर पूर्ण अधिकार है, परन्तु स्वत्व हमारा ही है; क्योंकि जब आप लोग यहाँ से चले जायँगे, तब तो मैं ही इसका उपभोग करूँगा।

लीला—कैसी सुंदर बात है, कैसा ऊँचा विचार है!

(सब आश्चर्य से एक दूसरे का मुँह देखते हैं)

विलास—आप लोग कुछ थके होंगे, इसलिए थोड़ी-थोड़ी पेया पी लीजिये, तब खेल होगा। देखिये, आप लोगों को आज एक नया खेल खिलाया जायगा। जो मैं कहूँ, वही करते चलिये।

युवक—ऐसा ?

विलास—हाँ, आप लोग गाते हुए घूमते और नाचते भी तो हैं ?

युवक और युवती—क्यों नहीं; परंतु उसका समय दूसरा होता है।

विलास—आज हम जैसा कहें, वैसा करना होगा।

कामना—अच्छी बात है। नया खेल देखा जायगा।

(कामना और लीला मदिरा ले आती हैं। विलास सब को पंक्ति से बैठाता और कामना को संकेत करता है। दोनों सब को मद्य पिलाती हैं। सब प्रसन्न होते हैं)

एक—(नशे में) अब खेल होना चाहिये।

सब—(मद-विह्वल हो कर) हाँ-हाँ, होना चाहिये।

विलास—अच्छा—(एक से पूछता है) क्यों, तुमको कौन स्त्री अच्छी लगती है ? देखो, उसके मुख पर कैसा प्रकाश है।

(एक दूसरे को स्त्री को दिखाता है)

वह युवक—हाँ, इसमें तो कुछ विचित्र विशेषता है।

विलास—अच्छा, तो इनमें से सब लोग इसी प्रकार एक-एक स्त्री को चुन लो।

(नशे में एक दूसरे की स्त्री को अच्छी समझते हुए उनका हाथ पकड़ते हैं। विलास सब को मंडलाकर खड़ा करता है)

कामना—अब क्या होगा ?

विलास—इस खेल में एक व्यक्ति बीच में रहेगा, जो सब की देख-रेख करेगा।

कामना—तुम्हीं रहो।

विलास—नहीं, मुझको तो आज अभी बताना पड़ेगा। आज तुम्हीं देखो। और, तुम तो इन लोगों में मुख्य हो भी।

सब—ठीक कहा।

विलास—अच्छा, तो कामना ? इस खेल की तुम रानी बनोगी। जब तुम कहोगी तभी यह खेल बंद होगा—समझीं ?

सब—अच्छी बात है।

(विलास चन्द्रहार और कंकण लाकर कामना को पहनाता है। सब आश्चर्य से देखते हैं)

विनोद और लीला—कामना रानी है।

विलास—सचमुच रानी है।

(कामना के संकेत करने पर नृत्य आरम्भ होता है, और विलास गाता है। सब उसका अनुकरण करते हैं)

पी ले प्रेम का प्याला !

भर ले जीवन-पात्र में यह अमृतमयी हाला।
सृष्टि विकासित हो आँखों में, मन हो मतवाला।

मधुप पी रहे मधुर मधु, फूलों का सानंद;
तारा - मद्यप - मंडली चषक भरा यह चंद।

सजा आपानक निराला। पी ले०।

(सब उन्मत्त होकर नाचते-नाचते मद्यप की चेष्टा करते हैं। विवेक का प्रवेश। आश्चर्य-चकित होकर देखता है)

विलास—कौन ?

विवेक—यह नरक है या स्वर्ग ?

विलास—बुड्ढे इसे स्वर्ग कहते हैं। तुम कैसे जान गये ?

विवेक—तो इसी स्वर्ग में नरक की सृष्टि होगी। भागो-भागो।

विलास—पागल है।

सब—पागल है ! पागल है !

(विवेक क्षोभ से भागता है)

[यवनिका-पतन]

दूसरा अङ्क

पहला दृश्य

स्थान—जंगल

(विलास, कामना, विनोद और लीला)

लीला—बहुत दूर चले आये। अब हम लोगों को लौटना चाहिए।

विलास—हाँ, इधर तो द्वीप के निवासी बहुत ही कम आते हैं।

विनोद—हम समझते हैं, अब इस द्वीप के मनुष्यों को और भूमि की आवश्यकता न होगी।

कामना—आवश्यकता तो होहींगी।

विलास—फिर इतना दुर्गम कांतार अनाक्रांत क्यों छोड़ दिया जाय? सम्भव है, कालांतर में इधर ही बसना पड़े।

विनोद—तब इधर—

विलास—तुम्हारे पास तीर और धनुष क्यों है?

विनोद—आने वाले भय से रक्षा के लिये।

विलास—परन्तु, यदि तुम्हीं उनके लिये भय के कारण बन जाओ, तब?

विनोद—कैसे?

विलास—मूर्ख, दुर्दान्त पशु जब तुम्हारे ऊपर आक्रमण करते हैं, तब तुम अपने को बचाते हो। यदि तुम उन पर आक्रमण करने लगो, तो वे स्वयं भागेंगे।

(चार युवक तीर और धनुष लिये आते हैं)

विलास—ये लोग भी आ गये।

कामना—हाँ, अब तो हम लोगों का एक अच्छा दल हुआ।

आगंतुक—कहिये, आज यहाँ कौन-सा नया खेल है ?

विलास—जो तुमको हानि पहुँचाने के लिये सदैव तत्पर हैं, उन्हें यदि तुम भयभीत कर सको, तो वे स्वयं कभी साहस न करेंगे, और साथ ही एक खेल भी होगा।

आगंतुक—बात तो अच्छी है।

विलास—अच्छा, सब लोग भयानक चीत्कार करो, जिससे पशु निकलेंगे, और तब तुम लोग उन पर तीर चलाना।

सब—(आश्चर्य से) ऐसा !

विलास—हाँ।

(सब चिल्लाते हैं, ताली पीटते हैं, पशुओं का भीतर दौड़ना, तीर लगना और छटपटाना)

सब—बड़ा विचित्र खेल है।

विलास—खेल ही नहीं, यह व्यायाम भी है।

कामना—परंतु विलास, देखो यह हरी-हरी घास रक्त से लाल रँगी जाकर भयानक हो उठी है, यहाँ का पवन भाराक्रांत होकर दबे-पाँव चलने लगा है।

विलास—अभी तुमको अभ्यास नहीं है रानी ! चलो विनोद, सब लिवाकर तुम चलो।

(विलास और कामना को छोड़कर और सब जाते हैं)

कामना—विलास !

विलास—रानी !

कामना—तुमने ब्याह नहीं किया।

विलास—किससे ?

कामना—मुझी से, उपासना-गृह की प्रथा पूरी नहीं हुई।

विलास—परन्तु और तो कुछ अंतर नहीं है। मेरा हृदय तो तुम से अभिन्न ही है। मैं तुम्हारा हो चुका हूँ।

कामना—परंतु—(सिर झुका लेती है)

विलास—कहो कामना ! (ठुड्डी पकड़कर उठाता है)

कामना—मैं अपनी नहीं रह गई हूँ प्रिय विलास ! क्या कहूँ।

विलास—तुम मेरी हो। परंतु सुनो, यदि इस विदेशी युवक से ब्याह करके कहीं तुम सुखी न होओ, या कभी मुझी को यहाँ से चला जाना पड़े ?

कामना—(आश्चर्य और क्षोभ से) नहीं विलास, ऐसा न कहो।

विलास—परंतु अब तो तुम इस द्वीप की रानी हो। रानी को क्या ब्याह करके किसी बंधन में पड़ना चाहिये।

कामना—तब तुमने मुझे रानी क्यों बनाया ?

विलास—रानी, तुमको इसलिए रानी बनाया कि तुम नियमों का प्रवर्तन करो। इस नियम-पूर्ण संसार में अनियंत्रित जीवन व्यतीत करना क्या मूर्खता नहीं है ? नियम अवश्य हैं। ऐसे नीले नभ में अनंत उल्का-पिंड, उनका क्रम से उदय और अस्त होना, दिन के बाद नीरव निशीथ, पक्ष-पक्ष पर ज्योतिष्मती राका और कुहू, ऋतुओं का चक्र,

और निस्संदेह शैशव के बाद उद्दाम यौवन, तब क्षोभ से भरी हुई जरा—ये सब क्या नियम नहीं हैं ?

कामना—यदि ये नियम हैं, तो मैं कह सकती हूँ कि अच्छे नियम नहीं हैं। ये नियम न होकर नियति हो जाते हैं, असफलता की ग्लानि उत्पन्न करते हैं।

विलास—कामना ! उदार प्रकृति बल, सौंदर्य और स्फूर्ति के फुहारे छोड़ रही है। मनुष्यता यही है कि सहज-लब्ध विलासों का, अपने सुखों का संचय और उनका भोग करे। नियमों के भले और बुरे, दोनों ही कर्तव्य होते हैं; प्रतिफल भी उन्हीं नियमों में से एक है। कभी-कभी उसका रूप अत्यन्त भयानक होता है, उससे जी घबराता है। परंतु मनुष्यों के कल्याण के लिए उसका उपयोग करना ही पड़ेगा; क्योंकि स्वय प्रकृति वैसा करती है। देखो, यह सुन्दर फूल झड़कर गिर पड़ा। जिस मिट्टी से रस खींचकर फूला था, उसी में अपना रंग-रूप मिला रहा है। परंतु विश्वम्भरा इस फूल के प्रत्येक केसर-बीज को अलग-अलग वृक्ष बना देगी, और उन्हें सैकड़ों फूल देगी।

कामना—इसमें तो बड़ी आशा है।

विलास—इसी का अनुकरण, निग्रह-अनुग्रह की क्षमता का केंद्र, प्रतिफल की अमोघ शक्ति से यथाभाग-संतुष्ट रखने का साधन, राज-शक्ति है। इस देश के कल्याण के लिए उसी तन्त्र का तुम्हारे द्वारा प्रचार किया गया है, और तुम बनाई गई हो रानी। और रानी का पुरुष कौन होता है, जानती हो ?

कामना—नहीं, बताओ।

विलास—राजा। परंतु मैं तुम्हें ही इस द्वीप की एकच्छत्र अधि-कारिणी देखा चाहता हूँ। उसमें हिस्सा नहीं बँटाना चाहता।

कामना—तब मेरा रानी होना व्यर्थ था।

विलास—परंतु तुम्हारी सब सेवा के लिए मैं प्रस्तुत हूँ। कामना, तुम द्वीप-भर में कुमारी ही बनी रहकर अपना प्रभाव विस्तृत करो। यही तुम्हारे रानी बने रहने के लिए पर्याप्त कारण हो जायगा।

कामना—यह क्या ? झूठ।

विलास—मैं जो कहता हूँ। चलो, वे लोग दूर निकल गये होंगे।

(दोनों जाते हैं)

[पटाक्षेप]

दूसरा दृश्य

(पथ में विवेक)

विवेक—डर लगता है। घृणा होती है। मुँह छिपा लेता हूँ। उनकी लाल आँखों में क्रूरता, निर्दयता और हिंसा दौड़ने लगी है। लोभ ने उन्हें भेड़ियों से भी भयानक बना रक्खा है। वे जलती-बलती आग में दौड़ने के लिए उत्सुक हैं। उनको चाहिये कठोर सोना और तरल मदिरा—देखो-देखो, वे आ रहे हैं।

(अलग छिप जाता है)

(मद्यप की-सी अवस्था में दो द्वीप-वासियों का प्रवेश)

१—आहा ! लीला की कैसी सुंदर गढ़न है।

२—और जब वह हार पहन लेती है, तो जैसे संध्या के गुलाबी आकाश में सुनहरा चाँद खिल जाता है।

१—देखो, तुम उसकी ओर न देखना।

२—क्यों, विनोद को छोड़कर तुम्हें भी जब यह अधिकार है, तब मैं ही क्यों वंचित रहूँ ?

१—परंतु फिर तुम्हारी प्रेयसी को—

२—बस, बस, चुप रहो।

१—तब क्या किया जाय। वह मुझसे कंकणों के लिए कहती थी, इतना सोना मैं कहाँ से इकट्ठा करूँ ?

२—नदी की रेत से।

१—बड़ा परिश्रम है।

२—तब एक उपाय है—

१—क्या ?

२—शांतिदेव इधर आनेवाला है। उसके पास बहुत-सा सोना है। वह ले लिया जाय। तीर और धनुष तो है न ?

१—यही करना होगा।

(विवेक का प्रवेश)

विवेक—क्यों, क्या सोचते हो युवक ?

१—तुमसे क्यों कहूँ ?

२—तुम पागल हो।

विवेक—उन्मत्त ! व्यभिचारी !! पशु !!!

१—चुप बूढ़े।

विवेक—व्यभिचार ने तुम्हें स्त्री-सौंदर्य का कलुषित चित्र दिखलाया है, और मदिरा उसपर रंग चढ़ाती है। क्यों, क्या यह सौंदर्य पहले कहीं छिपा था जो अब तुम लोग इतने लोलुप हो गये हो।

१—जा, जा, पागल बूढ़े, तू इस आनन्द को क्या समझे ?

विवेक—सौंदर्य, इस शोभन प्रकृति का सौंदर्य विस्मृत हो चला। हृदय का पवित्र सौंदर्य नष्ट हो गया। यह कुत्सित, यह अपदार्थ—

२—मूर्ख है, अंधा है। अरे मेरी आँखों से देख, तेरी आँखें खुल जायँगी, कुत्सित हृदय सौंदर्य-पूर्ण हो जायगा। बूढ़े, परंतु तुझे अब इन सब बातों से क्या काम ? जा।

१—तुझे क्या यदि उसकी भौंह में एक बल है, आँखों के डोरे में खिंचाव है, वक्षस्थल पर तनाव है, और अलकों में निराली उलझन है, चाल में लचीली लटक है ? तू आँखें बंद रख।

२—उसपर उन चमकते हुए सोने के कंकण-हारों से सुशोभित अम्लान आभूषण-परिपाटी मूर्ख—

१—पागल है।

विवेक—मैं पागल हूँ ! अच्छा है जो सज्ञान नहीं हूँ, इस वीभत्स कल्पना का आधार नहीं हूँ। हाय ! हाय ! हमारे फूलों के द्वीप के फूल अब मुरझाकर अपनी डाल से गिर पड़ते हैं। उन्हें कोई छूता नहीं। उनके सौरभ से द्वीप-वासियों के घर अब नहीं भर जाते। हाय मेरे प्यारे फूलो ! (जाता है)

दोनों—जा, जा ! (छिप जाते हैं) (शांतिदेव का प्रवेश)

शांतिदेव—मैं इसे कहाँ रक्खूँ, किधर से चलूँ ? हैं, मुझे क्या हो

गया ! क्यों भयभीत हो रहा हूँ ? इस द्वीप में तो यह बात नहीं थी। परंतु, तब सोना भी तो नहीं था ! अच्छा, इस पगडंडी से निकल चलूँ ।

(बगल से निकलना चाहता है कि दोनों छिपे हुए तीर चलाते हैं। शांतिदेव गिर पड़ता है। दोनों आकर उसको दबा लेते हैं। सोना खोजते हैं)

(अकस्मात् शिकारियों के साथ कामना का प्रवेश)

कामना—यह क्या, तुम लोग क्या कर रहे हो ?

लीला—हत्या—

विलास—घोर अपराध !

कामन—(शिकारियों से) बाँध लो इनको, ये हत्यारे हैं ।

(सब दोनों को पकड़ लेते हैं। शांतिदेव को उठाकर ले जाते हैं)

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

स्थान—कुटीर

(विनोद और लीला)

लीला—मेरा स्वर्ण-पट्ट ?

विनोद—अभी तक तो नहीं मिला।

लीला—आज तक तो आशा-ही-आशा है।

विनोद—परन्तु अब सफलता भी होगी।

लीला—कैसे ?

विनोद—अपराध होना आरम्भ हो गया है। अब तो एक दिन विचार भी होगा। देखो, कौन-कौन खेल होते हैं।

लीला—तुम उन दोनों को कहाँ रख आये ?

विनोद—पहले विचार हुआ कि उपासना-गृह या संग्रहालय में रक्खे जायँ। फिर यह निश्चित हुआ कि नहीं, मित्र-कुटुम्ब के लिए जो नया घर बन रहा है, उसी में रखना चाहिये। और, उन शिकारियों को वहाँ रक्षक नियत किया गया है।

लीला—इस योजना से कुछ-न-कुछ तुम्हें मिलेगा।

विनोद—परन्तु लीला, हम लोग कहाँ चले जा रहे हैं, कुछ समझ रही हो ? समझ में आने की ये बातें हैं ?

लीला—अच्छी तरह। (मदिरा का पात्र भरती हुई) कहीं नीचे, कहीं बड़े अंधकार में।

विनोद—फिर मुझे क्यों प्रोत्साहित कर रही हो ?

(लीला पात्र मुँह से लगा देती है, विनोद पीता है)

लीला—आज तुम्हें गाना सुनाऊँगी।

विनोद—(मद-विह्वल होकर) सुनाओ प्रिये !

(लीला गाती है)

छटा कैसी सलोनी निराली है,
देखो आई घटा मतवाली है।

आओ साजन मधु पियें, पहन फूल के हार;
फूल-सदृश यौवन खिला, है फूल की बहार।
भरी फूलों से बेले की डाली है॥ छटा०॥

शीतल धरती हो गई, शीतल पड़ीं फुहार;
शीतल छाती से लगी, शीतल चली बयार।
सभी ओर नई हरियाली है॥ छटा०॥

(सहसा कामना का कई युवकों के साथ प्रवेश)

कामना—फूल के हार कहाँ लीला! तपा हुआ सोने का हार है। शीतलता कहाँ, ज्वाला धधक उठी है। यह आनन्द करने का समय नहीं है।

विनोद—क्या है रानी?

कामना—विनोद, ये शिकारी उन अपराधियों के रक्षक हैं, इन्हें दिन-रात वहाँ रहना चाहिये। तब इनके जीवन-निर्वाह का प्रबंध—

विनोद—जैसी आज्ञा हो।

(विलास का प्रवेश)

विलास—ये शिकारी नहीं, सैनिक हैं, शांति-रक्षक हैं! सार्वजनिक संग्रहालय पर अधिकार करो। इनमें से कुछ उसकी रक्षा करेंगे, और बचे हुए कारागार की।

विनोद—कारागार क्या?

विलास—वही, जहाँ अपराधी रक्खे जाते हैं, जो शासन का मूल है, जो राज्य का अमोघ शस्त्र है।

लीला—(विनोद से) यह तो बड़ी अच्छी बात है।

कामना—विनोद, मैं तुमको सेनानी बनाती हूँ। देखो, प्रबंध करो। आतंक न फैलने पावे।

विलास—यह लो सेनापति का चिन्ह।

(एक छोटा-सा स्वर्ण-पट्ट पहनाता है। कामना तलवार हाथ में देती है। सब भय और आश्चर्य से देखते हैं)

कामना—(शिकारियों से) देखो, आज से जो लोग इनकी आज्ञा नहीं मानेंगे, उन्हें दंड मिलेगा। (सब घुटने टेकते हैं)

विलास—परन्तु सेनापति, स्मरण रखना, तुम इस राजमुकुट के अन्यतम सेवक हो। राजसेवा में प्राण तक दे देना तुम्हारा धर्म होगा।

विनोद—(घुटने टेककर) मैं अनुगृहीत हुआ।

लीला—(धीरे से) परन्तु यह तो बड़ा भयानक धर्म है।

कामना—हाँ विलास जी।

विलास—आज राजसभा होगी। उसी में कई पद प्रतिष्ठित किये जायँगे। वहीं सम्मान किया जाय।

कामना—अच्छी बात है।

(विनोद अपने सैनिकों के साथ परिक्रमण करता है)

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

(पथ में संतोष और विवेक)

संतोष—यह क्या हो रहा है ?

विवेक—इस देश के बच्चे दुर्बल, चिंताग्रस्त और झुके हुए दिखाई देते हैं ! स्त्रियों के नेत्रों में विह्वलता-सहित और भी कैसे-कैसे कृत्रिम भावों का समावेश हो गया है ! व्यभिचार ने लज्जा का प्रचार कर दिया है !

संतोष—छिप कर बातें करना, कानों में मंत्रणा करना, छुरों की चमक से आँखों में त्रास उत्पन्न करना, वीरता नाम के किसी अद्भुत पदार्थ की ओर अंधे होकर दौड़ना युवकों का कर्तव्य हो रहा है। वे शिकार और जुआ, मदिरा और विलासिता के दास होकर गर्व से छाती फुलाये घूमते हैं। कहते हैं, हम धीरे-धीरे सभ्य हो रहे हैं।

विवेक—सब बूढ़े मूर्ख और पुरानी लकीर पीटने वाले कहे जाते हैं।

संतोष—एक-एक पात्र मदिरा के लिए लालायित होकर दासता का बोझ वहन करते हैं। हृदय में व्याकुलता, मस्तिष्क में पाप-कल्पना भरी है।

विवेक—सोने का ढेर छल और प्रवंचना से एकत्रित करके थोड़े-से ऐश्वर्यशाली मनुष्य द्वीप-भर को दास बनाये हुए हैं। और, आशा में, कल स्वयं भी ऐश्वर्यवान् होने की अभिलाषा में, बचे हुए सीधे सरल व्यक्ति भी पतित होते जा रहे हैं।

संतोष—हत्या और पापों की दौड़ हो रही है, और धर्म की धूम है।

विवेक—चलो भाई, चलें, अब उपासना-गृह में शासन-सभा होगी। वहीं उन हत्यारों का विचार भी होनेवाला है। (देखता हुआ) उधर देखो, रानी उपासना-गृह में जा रही हैं।

संतोष—भला यह रानी क्या वस्तु है?

विवेक—मदिरा से ढुलकती हुई, वैभव के बोझ से दबी हुई, महत्त्वाकांक्षा की तृष्णा से प्यासी, अभिमान की मिट्टी की मूर्ति।

संतोष—परन्तु है प्रभावशालिनी। भला हम लोग तो यह सब कुछ नहीं जानते थे। यह कहाँ से—

विवेक—वही विदेशी, इंद्रजाली युवक विलास। उसकी तीक्ष्ण आँखों में कौशल की लहर उठती है। मुसकिराहट में शीतल ज्वाला और बातों में भ्रम की बहिया है।

संतोष—परन्तु हम सब जानते हुए भी अजान हो रहे हैं।

विवेक—कोई उपाय नहीं। (जाता है) (विलास का प्रवेश)

विलास—(स्वगत) यह बड़ा रमणीय देश है! भोले-भाले प्राणी थे, इनमें जिन भावों का प्रचार हुआ, वह उपयुक्त ही था। परन्तु सब करके क्या किया? अपने शाप-ग्रस्त और संघर्षपूर्ण देश की अत्याचार ज्वाला से दग्ध होकर निकला। यहाँ शीतल छाया मिली; मैंने किया क्या?

संतोष—वही ज्वाला यहाँ भी फैला दी, यहाँ भी नवीन पापों की सृष्टि हुई। अब सब द्वीपवासी और उनके साथ तुम भी उसी मानसिक नीचता, पराधीनता, दासता, द्वंद्व और दुःखों के अलात-चक्र में दग्ध हो रहे हो! आनंद के लिए सब किया; पर वह कहाँ! जब मन में आनंद नहीं, तब कहीं नहीं।

विलास—(देखकर) कौन? संतोष! तुम क्या जानोगे? भावुकता और कल्पना ही मनुष्य को कला की ओर प्रेरित करती है। इसी में उसके कल्याण का रहस्य है, पूर्णता है।

संतोष—विलास! तुम्हारे असंख्य साधन हैं। तब भी कहाँ तक? संसार की अनादि काल से की गई कल्पनाओं ने जगत को जटिल बना दिया, भावुकता गले का हार हो गई, कितनी कविताओं के पुराने पत्र पतझड़ के पवन में कहाँ-के-कहाँ उड़ गये! तिसपर भी संसार में

असंख्य मूक कवितायें हुई। चन्द्र-सूर्य की किरणों की तूलिका से अनन्त आकाश के उज्ज्वल पट पर बहुत-से नेत्रों ने दीप्तिमान रेखा-चित्र बनाये; परन्तु उनका चिह्न भी नहीं है। जिनके कोमल कंठ पर गला दे देना साधारण बात थी, उन्होंने तीसरो सप्तक की कितनी मर्म-भेदी तानें लगाई; किन्तु वे सर्वग्रासी आकाश के खोखले में विलीन होती गई।

(संतोष जाता है, कामना का प्रवेश)

कामना—(विलास को देखकर स्वगत) जैसे खिले हुए ऊँचे कदम्ब पर वर्षा के यौवन का एक सुनील मेघखंड छाया किये हो। कैसा मोहन रूप है (प्रगट) क्यों विलास ! यहाँ क्या कर रहे हो ?

विलास—विचार कर रहा हूँ।

कामना—क्या ?

विलास—जिस इच्छा के बीज का रोपण करता हूँ, हमारी महत्त्वाकांक्षा उसी के अंकुरों को सुरक्षित रखने के लिए—सूर्य के ताप से बचाने के लिए—अनन्त आकाश को मेघों से ढँक लेती है।

कामना—तब तो बड़ी अच्छी बात है ?

विलास—परन्तु सन्देह है कि कहीं मधु-वर्षा के बदले करकापात न हो।

कामना—मीठी भावनायें करो। प्रिय विलास, मधुर कल्पनायें करो। सन्देह क्यों ?

विलास—सामने देखो—वह समुद्र का यौवन, जल-राशि का वैभव; परन्तु उसमें नीची-ऊँची लहरें हैं।

कामना—नहीं देखते हो, सीपी अपने चमकीले दाँतों से हँस रही है। चलो, उपासना-गृह चलें।

विलास—तुम चलो, मैं अभी आता हूँ।

(कामना जाती है)

विलास—(स्वगत)—कामना एक सुन्दर रानी होने के योग्य प्रभावशालिनी स्त्री है। उसने ब्याह का प्रस्ताव किया था। मैं भी ब्याह के पवित्र बंधन में बँधकर राजा होकर सुखी होता; परन्तु मेरी मानसिक अव्यवस्था कैसे छाया-चित्र दिखलाती है! कोई अदृष्ट शक्ति संकेत कर रही है।—नहीं, कामना एक गर्व-पूर्ण और सरल हृदय की स्त्री है। रंगीन तो है, पर निरीह इंद्रधनुष के समान उदय होकर विलीन होने वाली है। तेज तो है, पर वेदी की धधकाने से जलने वाली ज्वाला है। मैं उसको अपना हृदय-समर्पण नहीं कर सकता। मुझको चाहिये बिजली के समान वक्र रेखाओं का सृजन करने वाली, आँखों को चौंधिया देने वाली तीव्र और विचित्र ज्वाला, जिस हृदय में ज्वालामुखी धधकती हो, जिसे ईंधन का काम न हो, वही दुर्दमनीय तेज ज्वाला। मैं उसी का अनुगत हूँगा। यह हृदय उसी का लोहा मानेगा। इस फूलों के द्वीप में मधुप के समान विहार करूँगा। मैं इस देश के अनिर्दिष्ट आकाश पथ का धूमकेतु हूँ। चलूँगा, मेरी महत्त्वाकांक्षा ने अवकाश और समय दोनों की सृष्टि कर दी है। उसमें पदार्थों के द्वारा नई सृष्टि के साथ मैं भी कुहेलिका-सागर में विलीन हो जाऊँ। (जाता है)

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—उपासना-गृह नवीन रूप में

(विलास सब लोगों को समझा रहा है, सब लोगों को खड़े होकर अभिवादन करना सिखला रहा है। बीच में वेदी, सामने सिंहासन, और दोनों ओर चौकियाँ हैं। मंडलाकार लोग एकत्रित हैं। राजदंड हाथ में लिये हुए कामना रानी का प्रवेश। पीछे सेनापति विनोद और सैनिक)

कामना—(सिंहासन के नीचे वेदी के सामने खड़ी होकर) हे परमेश्वर! तुम सब से उत्तम हो, सबसे महान् हो, तुम्हारी जय हो।

सब—तुम्हारी जय हो।

विलास—आप आसन ग्रहण करें।

(कामना मंच पर बैठती है)

कामना—आप लोगों को सुशासन की आवश्यकता हो गई है; क्योंकि इस देश में अपराधों की संख्या बहुत बढ़ती चली जा रही है। यह मेरे लिए गौरव की बात है कि मुझे आप लोगों ने इसके लिये उपयुक्त समझा है। परन्तु आप लोगों ने मेरे और अपने बीच का सम्बन्ध तो अच्छी तरह समझ लिया होगा?

एक—नहीं!

विलास—(आश्चर्य से) नहीं समझा! अरे, तुमको इतना भी नहीं ज्ञान हुआ कि यह तुम्हारी रानी हैं, और तुम इनके प्रजा?

सब—हम प्रजा हैं।

विलास—देखो, ईश्वर असंख्य प्राणियों का, इस सारी सृष्टि का

जिस प्रकार अधिपति है, उसी प्रकार तुम अपने कल्याण के लिए, अपनी सुव्यवस्था के लिए, न्याय और दंड के लिए इनको अपना अधिपति मानते हो। जिस प्रकार एक वन्य पशु दूसरे को सताकर उसे खा जाता है, और उसे दंड देने के लिए मृगया के रूप में ईश्वर हम लोगों को आज्ञा देता है, उसी प्रकार हमारी इस जाति के एक दूसरे के अपराधियों को दंड देने के लिए रानी की आवश्यकता हुई। और, वह हुई ईश्वर की प्रतिनिधि। अब सब लोग उसकी आज्ञा और नियमों का पालन करें; क्योंकि उसने तुम्हारे कष्टों को मिटाने के लिए पवित्र कुमारी होने का कष्ट उठाया है। उसके संकल्प हमारे कल्याण के लिए होंगे।

विनोद—यथार्थ है। (तलवार सिर से लगाता है)

सब—हम अनुगत हैं। हमारी रक्षा करो।

कामना—तुम सब सुखी होगे। मेरे दो हाथ हैं, एक न्याय करेगा, दूसरा दंड देगा। दंड के लिए सेनापति नियुक्त हैं, परन्तु न्याय में सहायता के लिए एक मंत्री की—परामर्शदाता की—आवश्यकता है, जिसमें मैं सत्य और न्याय के बल से शासन कर सकूँ। तुम लोगों में से कौन इस पद को ग्रहण करना चाहता है ?

(सब परस्पर मुँह देखते हैं)

कामना—मैं तो विलास को इस पद के उपयुक्त समझती हूँ; क्योंकि इन्हीं की कृपा और परामर्शों से हम लोगों ने बहुत उन्नति कर ली है।

लीला—मेरी भी यही सम्मति है।

सब लोग—अवश्य।

(कामना एक स्वर्ण पट्ट विलास को पहनाती है। एक ओर विलास दूसरी ओर विनोद चौकियों पर बैठते हैं। धूनी जलती है)

विलास—अपराधियों को बुलाया जाय।

विनोद—(सैनिकों से)—जाओ, उन्हें ले आओ।

(दो सैनिक एक-एक को बाँधे हुए ले आते हैं)

कामना—क्यों, तुम लोगों ने शान्तिदेव की हत्या की है?

विलास—और तुम अपना अपराध स्वीकार करते हो की नहीं?

१ अपराधी—हत्या किसे कहते हैं, यह मैं नहीं जानता। परन्तु जो वस्तु मेरे पास नहीं थी, उसी को लेने के लिए हम लोगों ने शांतिदेव पर तीरों से वार किया।

२ अपराधी—और इसलिए कि उसके पास का सोना हम लोगों को मिल जाय।

कामना—देखो, तुम लोगों ने थोड़े-से सोने के लिए एक मनुष्य की हत्या कर डाली। यह घोर दुष्कर्म है।

विलास—और इसका दंड भी ऐसा होना चाहिये कि देखकर लोग काँप उठें, फिर कोई ऐसा दुस्साहस न करे।

विवेक—जिससे डरकर लोग तुम्हारा सोना न छुएँ।

कामना—कौन है यह?

विनोद—वही पागल।

विवेक—इसने उसी वस्तु के लेने का प्रयत्न किया है, जिसकी आवश्यकता इस समय समग्र द्वीपवासियों को है। फिर—

विलास—परन्तु इसका उद्योग अनुचित था।

विवेक—मैं पागल हूँ, क्या समझूँगा कि उचित उपाय क्या है। उपाय वही उचित होगा, जिसे आप नियम का रूप देंगे। परन्तु मैं पूछता हूँ, यहाँ इतने लोग खड़े हैं, इनमें कौन ऐसा है, जिसे सोना न चाहिये ? (कामना-विलास का मुँह देखती है)

विवेक—वाह कैसा सुन्दर खेल है। खेलने के लिए बुलाते हो, और उसमें फँसाकर नचाते हो। स्वयं ज्वाला फैला दी है; अब पतंग गिरने लगे हैं, तो उनको भगाना चाहते हो ?

विलास—न्याय में हस्तक्षेप करने वाले इस वृद्ध को निकाल दो। पागलपन की भी एक सीमा होती है।

(विवेक निकाला जाता है)

कामना—अच्छा, इन्हें वंदीगृह में ले जाओ। अंतिम दंड इनको फिर दिया जायगा।

(बंदियों को सैनिक ले जाते हैं। विलास और कामना बातें करते हैं)

कामना—सेनापति, उपस्थित सभी पुरुषों को आज स्मरण-चिह्न लाकर दो।

(विनोद सब को स्वर्णमुद्रा देता है)

कामना—प्यारे द्वीपवासियो, मेरी एकांत इच्छा है कि हमारे द्वीप-भर के लोग स्वर्ण के आभूषणों से लद जायँ। उनकी प्रसन्नता के लिए मैं प्रचुर साधन एकत्र करूँगी। परन्तु उस काम में क्या आप लोग मेरा साथ देंगे ?

सब—यदि सोना मिले, तो हम लोग सब कुछ करने के लिए प्रस्तुत हैं।

विलास—सब मिलेगा, आप लोग रानी की आज्ञा मानते रहिये।

एक—अवश्य मानेंगे। परन्तु न्याय क्या ऐसा ही होगा ?

विलास—यह प्रश्न न करो।

विनोद—राजकीय आज्ञा की समालोचना करना पाप है।

विलास—दंड तो फिर दंड ही है। वह मीठी मदिरा नहीं है, जो गले में धीरे से उतार ली जाय।

सब—ठीक है। यथार्थ है।

विलास—देखो, अब से तुम लोग एक राष्ट्र में परिणत हो रहे हो। राष्ट्र के शरीर की आत्मा राजसत्ता है। उसका सदैव आज्ञापालन करना, सम्मान करना।

सब—हम लोग ऐसा ही करेंगे।

(विनोद घुटने टेकता है। सब वैसा ही करके जाते हैं)

[पट-परिवर्तन]

छठा दृश्य

स्थान—शांतिदेव का घर

लालसा—मेरा कोई नहीं है; साथी, जीवन का संगी और दुःख में सहायक कोई नहीं है। अब यह जीवन बोझ हो रहा है। क्या करूँ, अकेली बैठी हूँ, इतना सोना है, परन्तु इसका भोग नहीं, इसका सुख नहीं। ओह ! (उठती और मदिरा का पात्र भरकर पीती है) परन्तु नहीं, यह जीवन, जिसके लिये अनंत सुख-साधन हैं, रोकर बिता देने के

लिये नहीं है। सब सुखी हैं, सब सुख की चेष्टा में हैं, फिर मैं ही क्यों कोने में बैठकर रुदन करूँ? देखो, कामना रानी है। वह भी तो इसी द्वीप की एक लड़की है। फिर कौन-सी बात ऐसी है, जो मेरे रानी होने में बाधक है? मैं भी रानी हो सकती हूँ, यदि विलास को—हाँ, क्यों नहीं। (अपने आभूषणों को देखती है, वेष-भूषा सँवारती है, और गाती है)—

किसे नहीं चुभ जायँ, नैनों के तीर नुकीले?
पलकों के प्याले रसीले, अलकों के फंदे गँसीले,
कौन देखूँ बच जाय, नैनों के तीर नुकीले।

(विलास का प्रवेश)

विलास—लालसा! लालसा! यह कैसा संगीत है? यह अमृत-वर्षा! मुझे नहीं विदित था कि इस मरुभूमि में मीठे पानी का सोता छिपा हुआ बह रहा है। इधर से चला जा रहा था, अकस्मात् यह मनोहर ध्वनि सुनाई पड़ी। मैं आगे न जा सका, लौट आया।

लालसा—(बड़ी रुखाई से देखती हुई) आप! आप कौन हैं? हाँ, आप हैं! अच्छा, आ ही गये तो बैठ जाइये।

विलास—सुंदरी! इतना निष्ठुर विभ्रम! इतनी अंतरात्मा को मसलकर निचोड़ लेने वाली रुखाई! तभी तुम्हारे सामने हार मानने की इच्छा होती है।

लालसा—इच्छा होती है, हुआ करे, मैं किसी को इच्छा को रोक सकती हूँ।

विलास—परन्तु पूरी कर सकती हो।

लालसा—स्वयं रानी पर जिसका अधिकार है, उसकी कौन सी इच्छा अपूर्ण होगी ?

विलास—अब मुझी पर मेरा अधिकार नहीं रहा।

लालसा—देखती हूँ, बहुत-सी बातें भी आप से सीखी जा सकती हैं।

विलास—इसका मुझे गर्व था, परन्तु आज जाता रहा। मेरी जीवन-यात्रा में इसी बात का सुख था कि मुझ पर किसी स्त्री ने विजय नहीं पाई; परन्तु वह झूठा गर्व था। आज—

लालसा—तो क्या मैं सचमुच सुंदरी हूँ ?

विलास—इसमें प्रमाण की आवश्यकता नहीं।

लालसा—परन्तु मैं इसको जाँच लूँगी, तब मानूँगी। दो-एक लोगों से पूछ लूँ। कहीं मुझे झूठा प्रलोभन तो नहीं दिया जा रहा है।

विलास—लालसा, मैं मानता हूँ। (स्वगत) अब तो भाव और भाषा में कृत्रिमता आ चली।

लालसा—फिर किसी दिन, मुझे अपना मूल्य लगा लेने दीजिये।

विलास—अच्छा, एक बार वही गान तो सुना दो।

लालसा—जब मंत्री महाशय की आज्ञा है, तब तो पूरी करनी ही पड़ेगी। अच्छा, एक पात्र तो ले लीजिये।

(गाती है—पिलाती है)—

किसे नहीं चुभ जायँ...इत्यादि

विलास—कोई नहीं, कोई नहीं, इस अस्त्र से कौन बच सकता है ? अच्छा तो फिर ! किसी दिन।

(लालसा विचित्र भाव से सिर हिला देती है। विलास जाता है)

(लीला का प्रवेश)

लालसा—आओ सखी, बहुत दिनों में दिखाई

लीला—नित्य आने-आने करता हूँ, परंतु—

लालसा—परंतु विनोद से छुट्टी नहीं मिलती।

लीला—विनोद, वह तो एक निष्ठुर हत्यारा हो उठा है। उस को मृगया से अवकाश नहीं।

लालसा—तब भी तुम्हारी तो चैन से कटती है।

(संकेत करती है)

लीला—चुप, तू भी वही—

लालसा—आह, यह लो—

लीला—मन नहीं लगा, तो तेरे पास चली आई।

लालसा—तो मेरे पास मन लगने की कौन-सी वस्तु है? अकेली बैठी हुई दिन बिताती हूँ। गाती हूँ, रोती हूँ, और सोती हूँ।

लीला—तेरे आभूषणों की तो द्वीप-भर में धूम है।

लालसा—परंतु दुर्भाग्य को तो न कहोगी।

लीला—तू तो बात भी लम्बी-चौड़ी करने लगी। अभी-अभी तो देखा, विलास चले जा रहे हैं।

लालसा—और तू कहाँ से आ रही है, वह भी बताना पड़ेगा।

लीला—चुप, देख रानी आ रही हैं।

(रक्षकों के साथ रानी का प्रवेश। लालसा और लीला स्वागत करती हैं। संकेत करने पर सैनिक बाहर चले जाते हैं)

कामना—लालसा, तू लोगों से अब कम मिलती है, यह क्यों?

लालसा—रानी, जी नहीं चाहता।

कामना—इसी से तो मैं स्वयं चली आई।

लालसा—यह आपकी कृपा है कि प्रजा पर इतना अनुग्रह है।

लीला—रानी, इसे बड़ा दुःख है।

कामना—मेरे राज्य में दुःख!

लालसा—हाँ रानी! मैं अकेली हूँ। अपने स्वर्ण के लिए दिन-रात भयभीत रहती हूँ।

कामना—लालसा, सब के पास जब आवश्यकतानुसार स्वर्ण हो जायगा, तभी यह अशांति दबेगी।

लालसा—रानी, यदि क्षमा मिले, तो एक उपाय बताऊँ।

रानी—हाँ-हाँ, कहो।

लालसा—यह तो सब को विदित है कि शांतिदेव के पास बहुत सोना है। परंतु यह कोई नहीं जानता कि वह कहाँ से आया।

लीला—हाँ-हाँ, बताओ, वह कहाँ से आया?

लालसा—नदी-पार के देश से। आज तक इधर के लोग न-जाने कब से यही जानते थे कि उस पार न जाना, उधर अज्ञात प्रदेश है। परंतु शांतिदेव ने साहस करके उधर की यात्रा की थी, वह बहुत-से पशुओं और असभ्य मनुष्यों से बचते हुए वहाँ से यह सोना ले आये। जब नदी के इस पार आये, तो लोगों ने देख लिया, और इसी से उनकी हत्या भी हुई।

कामना—हाँ! (आश्चर्य प्रकट करती है)

लालसा—हाँ रानी, और उन हत्यारों को आज तक दंड भी नहीं मिला।

लीला—रानी, उसमें तो व्यर्थ विलम्ब हो रहा है। अवश्य कोई कठोर दंड उन्हें मिलना चाहिये। बेचारा शांतिदेव!

कामना—अच्छा, चलो आज मृगया का महोत्सव है, वहीं सब प्रबंध हो जायगा।

(सब जाते हैं)

[पट-परिवर्तन]

सातवाँ दृश्य

स्थान—जंगल में एक कुटी

(वृक्ष के नीचे करुणा बैठी हुई)

संतोष—(प्रवेश करके) पतझड़ हो रहा है, पवन ने चौंका देने वाली गति पकड़ ली है—इसे वसन्त का पवन कहते हैं—मालूम होता है कि कर्कश और शीर्ण पत्रों के बीच चलने में उसकी असुविधा का ध्यान करके प्रकृति ने कोमल पल्लवों के सृजन करने का समारम्भ कर दिया है। विरल डालों में कहीं-कहीं दो फूल और कहीं हरे अंकुर झूलने लगे हैं। गोधूली में खेतों के बीच की पग-डंडियाँ निर्जन होने पर भी मनोहर हैं—दूर-दूर रहट चलने का शब्द कम और कृषकों का गाना विशेष हो चला है। इसी वातावरण में हमारा देश बड़ा रमणीय था, परंतु अब क्या हो रहा है, कौन कह सकता है। सब सुख स्वर्ण के अधीन हो गये। हृदय का सुख खो गया। पतझड़ हो रहा है।

करुणा—मानव-जीवन में कभी पतझड़ है, कभी वसंत। वह स्वयं कभी पत्तियाँ झाड़कर एकान्त का सुख लेता है, कोलाहल से भागता है, और कभी-कभी फल-फूलों से लदकर नोचा-खसोटा जाता है।

संतोष—तुम कौन हो ?

करुणा—इसी अभागे देश की एक बालिका, जहाँ जीवन के साधारण सुख धन के आश्रय में पलते हैं, जिसका अभाव दरिद्रता है।

संतोष—दरिद्रता ! कैसी विकट समस्या ! देवी दरिद्रता सब पापों की जननी है, और लोभ उसकी सबसे बड़ी सन्तान है। उसका नाम न लो। देखो, अन्न के पके हुए खेतों में पवन के सर्राटे से लहर उठ रही है ! दरिद्रता कैसी ? कपड़े के लिए कपास बिखरे हैं। अभाव किसका है ? सुख तो मान लेने की वस्तु है। कोमल गद्दों पर चाहे न मिले; परन्तु निर्जन मूक शिलाखंड से उसकी शत्रुता नहीं।

करुणा—हाँ, वसन्त की भी शोभा है और पतझड़ में भी एक श्री है। परंतु वह सुख के संगीत अब इस देश में कहाँ सुनाई पड़ते हैं जिनसे वृक्षों में—कुंजों में—हलचल हो जाती थी और पत्थरों में झनकार उठती थी। अब केवल एक क्षीण क्रन्दन उसके अट्टहास में बोलता है !

संतोष—देवी, तुम्हारे और कौन हैं ?

करुणा—यह प्रश्न इस द्वीप में नहीं था। सब एक कुटुम्ब थे; परन्तु अब तो यही कहना पड़ेगा कि मैं शांतिदेव की बहन हूँ। जब से उसकी हत्या हुई, मैं निस्सहाय हो गई ! लालसा ने सब धन अपना लिया, और घर में भी मुझे न रहने दिया। वह कहती है कि इस घर और सम्पत्ति

पर केवल मेरा अधिकार है और रहेगा ! मैं इस स्थान पर कुटीर बनाकर रहती हूँ। अकेली मैं अन्न नहीं उत्पन्न कर सकती, जंगली फलों पर निर्वाह करती हूँ। मैं और कोई भी संसार के पदार्थ नहीं पा सकती; क्योंकि सबके विनिमय के लिए अब सोना चाहिये। प्राकृतिक अमूल्य पदार्थों का मूल्य हो गया—वस्तु के बदले आवश्यक वस्तु न मिलने से प्राकृतिक साधन भी दुर्लभ हैं। सोने के लिए सब पागल हैं ! अकारण कोई बैठने नहीं देता। जीवन के समस्त प्रश्नों के मूल में अर्थ का प्राधान्य है। मैं दूर से उन धनियों के परिवार का दृश्य देखती हूँ। वे धन की आवश्यकता से इतने दरिद्र हो गये हैं कि उसके बिना उनके बच्चे उन्हें प्यारे नहीं लगते। धन का—अर्थ का—उपभोग करने के लिए बच्चों की—संतानों की—आवश्यकता होती है। मैं अपनी निर्धनता के आँसू पीकर संतोष करती हूँ और लौटकर इसी कुटीर में पड़ रहती हूँ।

संतोष—धन्य है तू बहन ! आज से मैं तेरा भाई हूँ, मैं तेरे लिए हल चलाऊँगा, तू दुःख न कर, मैं तेरा सब काम करूँगा। जिसका कोई नहीं है, मैं उसी का होकर देखूँगा कि इसमें क्या सुख है। हाँ, नाम तो बताया ही नहीं ?

करुणा—करुणा।

संतोष—और मेरा नाम संतोष है बहन !

करुणा—अच्छा भाई, चलो, कुछ फल है, खालो।

(दोनों कुटीर में जाते हैं)

[पट-परिवर्तन]

आठवाँ दृश्य

(जंगल में शिकारी लोग मांस भून रहे हैं, मद्य चल रहा है, नये शिकार के लिए खोज हो रही है। एक ओर से विलास और विनोद का प्रवेश। दूसरी ओर से कामना, लालसा और लीला का आना। विनोद तलवार निकालकर सिर से लगाता है। वैसा ही सब करते हैं)

सब—रानी की जय हो।

कामना—तुम लोगों का कल्याण हो।

विलास—रानी, तुम्हारी प्रजा तुम्हें आशीर्वाद देती है।

विनोद—उसके लिए वैभव और सुख का आयोजन होना चाहिये।

कामना—लालसा सोने की भूमि जानती है। वह तुम लोगों को बतावेगी। क्या उसे पाने के लिए तुम लोग प्रस्तुत हो ?

सब—हम सब प्रस्तुत हैं।

लालसा—उसके लिए बड़ा कष्ट उठाना पड़ेगा।

सब—हम सब उठावेंगे।

लालसा—अच्छा, तो मैं बताती हूँ।

विनोद—और, इस प्रसन्नता में मैं पहले से आप लोगों को एक वन-भोज के लिए आमंत्रित करता हूँ।

लीला—परंतु लालसा की एक प्रार्थना है।

सब—अवश्य सुननी चाहिये।

लालसा—शांतिदेव की हत्या का प्रतिशोध।

(सब एक दूसरे का मुँह देखते हैं। लालसा विलास की ओर आशा से देखती है)

विलास—अवश्य, उन हत्यारे बंदियों को बुलाओ।

(चार सैनिक जाते हैं)

कामना—हाँ, तो तुम लोगों को उस भूमि पर अधिकार करना होगा! डरोगे तो नहीं? वह भूमि नदी के उस पार है।

एक—जिधर हम लोग आज तक नहीं गये?

विनोद—इसी कायरता के बल पर स्वर्ण का स्वप्न देखते हो?

सब—नहीं, नहीं, सेनापति, आपने यह अनुचित कहा। हम सब वीर हैं।

विनोद—यदि वीर हो, तो चलो—वीरभोग्या तो वसुंधरा होती ही है। उसपर जो सबल पदाघात करता है, उसे वह हृदय खोलकर सोना देती है।

कामना—लालसा को धन्यवाद देना चाहिये।

(बन्दी हत्यारों के साथ सैनिकों का प्रवेश)

लालसा—यही है, यही है मेरे शांतिदेव का हत्यारा!

कामना—तुम लोगों ने अपराध स्वीकार किया है?

विवेक—(प्रवेश करके) मैंने तो आज बहुत दिनों पर यह नई सृष्टि देखी है। परंतु जो देखता हूँ, वह अद्भुत है। इन्होंने एक हत्या की थी सोने के लिए, परंतु तुम लोग उदर-पोषण के लिए सामूहिक रूप से आज निरीह प्राणियों की हत्या का महोत्सव मना रहे हो। कल इसी प्रकार मनुष्यों की हत्या का आयोजन होगा।

हत्यारे—हमने कोई अपराध नहीं किया।

लीला—हत्यारों को इतना बोलने का अधिकार नहीं।

लालसा—इन्हें इन्हीं शिकारियों से मरवाना चाहिये।

विलास—जिसमें सब भयभीत हों, वैसा ही दंड उपयुक्त होगा।

कामना—ठीक है। इसी वृक्ष से इन्हें बाँध दिया जाय। और सब लोग तीर मारें।

(मदिरोन्मत्त सैनिक वैसा ही करते हैं। कामना मुँह फेर लेती है)

विवेक—रानी, देखो, अपना कठोर दंड देखो। और देखो अपराध से अपराध-परम्परा की सृष्टि।

विलास—इस पागल को तुम लोग यहाँ क्यों आने देते हो।

विवेक—मेरी भी इस खुली हुई छाती पर दो-तीन तीर! रक्त की धारा वक्षस्थल पर बहेगी, तो मैं भी समझूँगा कि तपा हुआ लाल सोने का हार मुझे उपहार में मिला है। रानी के सभ्य राज्य का जय-घोष करूँगा। लोहू के प्यासे भेड़ियो, तुम जब बर्बर थे, तब क्या इससे बुरे थे? तुम पहले इससे भी क्या विशेष असभ्य थे? आज शासन-सभा का आयोजन करके सभ्य कहलानेवाले पशुओ, कल का तुम्हारा धुँधला अतीत इससे उज्ज्वल था।

कामना—यह बूढ़ा तो मुझे भी पागल कर देगा।

विनोद—हटाओ इसको।

(दो सैनिक उसे निकालते हैं)

विलास—तो लालसा कब बतावेगी उस भूमि को।

लालसा—मैं साथ चलूँगी।

विलास—फिर उस देश पर आक्रमण की आयोजना होनी चाहिये।

कामना—सब सैनिक प्रस्तुत हो जायँ।

सब—जब आज्ञा हो।

विनोद—वन-भोज समाप्त करके।

(सैनिक घूमते हैं)

कामना—अच्छी बात है।

(सब स्त्री पुरुष एकत्र बैठते हैं। मद्य-मांस का भोज। उन्मत्त होकर सब का विकट नृत्य)

विनोद—मेरा एक प्रस्ताव है।

सब—कहिये।

विनोद—यदि रानी की आज्ञा हो।

कामना—हाँ, हाँ, कहो।

विनोद—ऐसी उपकारिणी लालसा के कष्टों का ध्यान कर सब लोगों को चाहिये कि उनसे ब्याह कर लेने की प्रार्थना की जाय। कृतज्ञता प्रकाश करने का यह अच्छा अवसर है।

कामना—परन्तु—

विलास—नहीं रानी, उसका जीवन अकेला है, और अकेली पवित्रता केवल आपके लिये—

कामना—हाँ, अच्छी बात है; परन्तु किसके साथ ?

एक स्त्री—नाम तो लालसा को ही बताना पड़ेगा।

लालसा—मैं तो नहीं जानती।

(लज्जित होती है)

लीला—तो मैं चाहती हूँ कि हम लोगों के परम उपकारी विलास जी ही इस प्रार्थना को स्वीकार करें। यह जोड़ी बड़ी अच्छी होगी।

सब—(एक स्वर से) बहुत ठीक है।

(विनोद लालसा का और लीला विलास का हाथ पकड़कर मिला देते हैं। कामना त्रस्त हो उस यूथ से अलग होकर खड़ी हो जाती और आश्चर्य तथा करुणा से देखती है। स्त्रियाँ घेर कर नाचती हुई गाती हैं)

छिपाओगी कैसे—
आँखें कहेंगी।
बिथुरी अलक पकड़ लेती है,
प्रेम की आँख चुराओगी कैसे—
आँखें कहेंगी।

राग रक्त होते कपोल हैं
लेते ही नाम बताओगी कैसे—
आँखें कहेंगी।

[यवनिका-पतन]

तीसरा अङ्क

पहला दृश्य

क्रूर, दुर्वृत्त, प्रमदा और दम्भ

(नवीन नगर का एक भाग, आचार्य दम्भ का घर)

दम्भ—निर्जन प्रान्तों में गन्दे झोंपड़े ! बिना प्रमोद की रातें। दिन-भर कड़ी धूप में परिश्रम करके मृतकों की-सी अवस्था में पड़ रहना। संस्कृति-विहीन, धर्म-विहीन जीवन ! तुम लोगों का मन तो अवश्य ऊब गया होगा।

प्रमदा—आचार्य—कहीं मदिरा की गोष्ठी के उपयुक्त स्थान नहीं ! संकेत-गृहों का भी अभाव ! उजड़े कुंज, खुले मैदान और जंगल, शीत, वर्षा तथा ग्रीष्म की सुविधा का कोई साधन नहीं। कोई भी विलास-शील प्राणी कैसे सुख पावे।

दम्भ—इसीलिए तो नवीन नगर-निर्माण की मेरी योजना सफल हो चली है। झुंड-के-झुंड लोग इसमें आकर बसने लगे हैं। जैसे मधु-मक्खियाँ अपने मधु की रक्षा के लिए मधुचक्र का सृजन करती हैं, वैसे ही इस नगर में धर्म और संस्कृति की रक्षा होगी। नवीन विचारों का यह केन्द्र होगा। धर्म-प्रचार में यहाँ से बड़ी सहायता मिलेगी।

दुर्वृत्त—बड़ा सुन्दर भविष्य है। सुन्दर महल, सार्वजनिक भोजना-लय, संगीत-गृह और मदिरा-मन्दिर तो हैं ही; इनमें धर्म-भवनों की

भव्यता बड़ा प्रभाव उत्पन्न कर रही है। देहाती अर्धसभ्य मनुष्यों को ये विशेष रूप से आकर्षित करते हैं। इससे उनके मानसिक विकास में बड़ी सहायता मिलेगी।

क्रूर—यह तो ठीक है। पर यहाँ अधिक-से-अधिक सोने की आवश्यकता होगी। यहाँ व्यय की प्रचुरता नित्य अभाव का सृजन करेगी, और अन्य स्थानों की अच्छी वस्तु यहाँ एकत्र करने के लिए नये उद्योग-धन्धे निकालने होंगे।

दम्भ—स्वर्ण के आश्रय में ही संस्कृति और धर्म बढ़ सकते हैं। उपाय जैसे भी हो, उनसे सोना इकट्ठा करो; फिर उनका सदुपयोग करके हम प्रायश्चित्त कर लेंगे।

प्रमदा—स्त्रियाँ पुरुषों की दासता में जकड़ गई हैं; क्योंकि उन्हें ही स्वर्ण की अधिक आवश्यकता है। आभूषण उन्हीं के लिए है। मैंने स्त्रियों की स्वतंत्रता का मन्दिर खोल दिया है। यहाँ वे नवीन वेष-भूषा से अद्भुत लावण्य का सृजन करेंगी। पुरुष स्वयं अब उनके अनुगत होंगे। मैं वैवाहिक जीवन को घृणा की दृष्टि से देखती हूँ। उन्हें धर्म-भवनों की देवदासी बनाऊँगी।

दुर्वृत्त—और यहाँ कौन उसे अच्छा समझता है। पर मैंने कुछ दूसरा ही उपाय सोच लिया है।

क्रूर—वह क्या ?

दुर्वृत्त—इतने मनुष्यों के एकत्र रहने में सुव्यवस्था की आवश्यकता है। नियमों का प्रचार होना चाहिये। इसलिए इस धर्म-भवन से समय-समय पर व्यवस्थायें निकलेंगी। वे अधिकार उत्पन्न करेंगी, और

जब उनमें विवाद उत्पन्न होगा, तो हम लोगों का लाभ ही होगा। नियम न रहने से विशृंखला जो उत्पन्न होगी।

क्रूर—प्रमदा के प्रचार से विलास के परिमाण-स्वरूप रोग भी उत्पन्न होंगे। इधर अधिकारों को लेकर झगड़े भी होंगे, मार-पीट होगी। तो फिर मैं औषधि और शस्त्र-चिकित्सा के द्वारा अधिक-से-अधिक सोना ले सकूँगा।

प्रमदा—परन्तु आचार्य की अनुमति क्या है?

दुर्वृत्त—आचार्य होंगे व्यवस्थापक। फिर तो अवस्था देखकर ही व्यवस्था बनानी पड़ेगी।

दम्भ—संस्कृति का आन्दोलन हो रहा है। उसकी कुछ लहरें ऊँची हैं और कुछ नीची। यह भेद अब फूलों के द्वीप में छिपा नहीं रहा। मनुष्य-मात्र के बराबर होने के कोरे असत्य पर अब विश्वास उठ चला है। उसी भेद-भाव को लेकर समाज अपना नवीन सृजन कर रहा है। मैं उसका संचालन करूँगा।

दुर्वृत्त—परोपकार और सहानुभूति के लिए समाज की अत्यन्त आवश्यकता है।

दम्भ—योग्यता और संस्कृति के अनुसार श्रेणी-भेद हो रहा है। जो समुन्नत विचार के लोग हैं, उन्हें विशिष्ट स्थान देना होगा। धर्म-संस्कृति और समाज की क्रमोन्नति के लिए अधिकारी चुने जाँयगे। इससे समाज की उन्नति में बहुत-से केन्द्र बन जायँगे, जो स्वतन्त्र रूप से इसकी सहायता करेंगे। उस समय हमारी जाति समृद्ध और

आनन्द-पूर्ण होगी। इस नगर में रहकर हम लोग युद्ध और आक्रमणों से भी बचेंगे।

(विवेक प्रवेश करके)

विवेक—बाबा! ये बड़े-बड़े महल तुम लोगों ने क्यों बना डाले? क्या अनन्त काल तक जीवित रह कर दुख भोगने की तुम लोगों की बलवती इच्छा है?

दम्भ—गन्दा वस्त्र, असभ्य व्यवहार, यह कैसा पशु के समान मनुष्य है! इसको लज्जा नहीं आती।

विवेक—जो अपराध करता है, उसे लज्जा होती है। मैं क्यों लज्जित होऊँ। मुझे किसी स्त्री की ओर प्यासी आँखों से नहीं देखना है, और न तो कपड़ों के आडम्बर में अपनी नीचता छिपाना है।

दुर्वृत्त—बर्बर! तुझे बोलने का भी ढंग नहीं मालूम! जा, चला जा, नहीं तो मैं बता दूँगा कि नागरिकों से कैसे व्यवहार किया जाता है।

विवेक—काँटे तो बिछ चुके थे, उनसे पैर बचाकर चलने में त्राण हो जाता; परन्तु तुम लोगों ने नगर बनाकर धोके की टट्टियों और जालों का भी प्रस्तार किया है। तुम्हीं मुँह के बल गिरोगे। सम्हलो। लौट चलो उस नैसर्गिक जीवन की ओर, क्यों कृत्रिमता के पीछे दौड़ लगा रहे हो।

प्रमदा—जा बूढ़े, जा; कहीं से एक पात्र मदिरा माँगकर पी ले, और उसके आनन्द में किसी जगह पड़ रह। क्यों अपना सिर खपाता है।

विवेक—ओह! शान्ति और सेवा की मूर्ति, स्त्री के मुख से यह क्या सुन रहा हूँ—फूलों के मुँह से वीभत्सता की ज्वाला निकलने लगी

है। शिशिर-प्रभात के हिम-कण चिनगारियाँ बरसाने लगे हैं। पिता! इन्हें अपनी गोद में ले लो।

दम्भ—चुप! धर्म-शिक्षा देने का तुझे अधिकार नहीं—जा, अपने माँद में घुस। अस्पृश्य! नीच!!

विवेक—मैं भागूँगा, इस नगर-रूपी अपराधों के घोंसले से अवश्य भागूँगा—परन्तु तुम पर दया आती है। (जाता है)

दम्भ—गया। सिर दुखने लगा। इस बकवादी को किसी ने रोका भी नहीं!

दुर्वृत्त—इन्हीं सब बातों के लिए नियम की—व्यवस्था की—आवश्यकता है।

प्रमदा—जाने दो। कुछ मदिरा का प्रसंग चले। देखो, वे नागरिक आ रहे हैं।

(मद्यपात्र लिये हुए नागरिक और स्त्रियाँ आती हैं)

(सबका पान और नृत्य)

[पट-परिवर्तन]

दूसरा दृश्य

स्थान—स्कंधावार में पट-मंडप

(कामना रानी)

कामना—प्रकृति शांत है, हृदय चंचल है। आज चाँदनी का समुद्र बिछा हुआ है। मन मछली के समान तैर रहा है; उसकी प्यास नहीं बुझती। अनंत नक्षत्र-लोक से मधुर वंशी की झनकार निकल रही है;

परंतु कोई गाने वाला नहीं है। किसी का स्वर नहीं मिलता। दासी! प्यास—

(सन्तोष का प्रवेश)

कामना—कौन ? सन्तोष !

सन्तोष—हाँ रानी।

कामना—बहुत दिनों पर दिखाई पड़े।

सन्तोप—हाँ रानी।

कामना—किधर भूल पड़े ? अब क्या डर नहीं लगता ?

सन्तोष—लगता है रानी।

कामना—(कुछ संकोच से) फिर भी किस साहस से यहाँ आये।

सन्तोष—(मुस्कुराकर) देखने के लिए कि मेरी आवश्यकता अब भी है कि नहीं।

कामना—परिहास न करो सन्तोष !

सन्तोष—परिहास ! कभी नहीं। जब हृदय ने पराभव स्वीकार करके विजय-माला तुम्हें पहना दी और तुम्हारे कपोलों पर उत्साह की लहर खेल रही थी, उसी समय तुमने ठोकर लगाकर मेरी सुन्दर कल्पना को स्वप्न कर दिया। रमणी का रूप—कल्पना का प्रत्यक्ष—सम्भावना की साकारता और दूसरे अतीन्द्रिय रूप-लोक, जिसके सामने मानवीयमहत् अहम्-भाव लोटने लगता है। जिस पिच्छल भूमि पर स्खलन विवेक बनकर खड़ा होता है। जहाँ प्राण अपनी अतृप्त अभिलाषा का आनन्द-निकेतन देखकर पूर्ण वेग से धमनियों में दौड़ने लगता है। जहाँ चिन्ता विस्मृत होकर विश्राम करने लगती है। वही रमणी का

—तुम्हारा—रूप देखा था—और यह नहीं कह सकता कि मैं झुक नहीं गया। परन्तु मैंने देखा कि उस रूप में पूर्ण चन्द्र के वैभव की चन्द्रिका-सी सब को नहला देने वाली उच्छृङ्खल वासना। वह अपार यौवन-राशि समुद्र के जल-स्तूप के समान समुन्नत—उसमें गर्व से ऊँची लहरियाँ चढ़ती थीं—गिरती थीं। वह जलराशि मेरे लिए रहस्य-पूर्ण कूतूहल की प्रेरक थी। मैंने विचारा कि यह प्यास बुझाने का मधुर स्रोत नहीं है, जो मल्लिका की मीठी छाँह में बहता है।

कामना—क्या यह सम्भव नहीं कि तुमने भूल की हो, उसे उजेले में न देखा हो! अँधेरे में अपनी वस्तु न पहचान सके हो?

सन्तोष—वह तमिस्रा न थी, और न तो अन्धकार था, प्रेम की गोधूली थी, संध्या थी। जब वृक्षों की पत्तियाँ सोने लगती हैं, जब प्रकृति विश्राम करने का संकेत करती है। पवन रुक कर सन्ध्या-सुन्दरी के सीमान्त में सूर्य का सिन्दूर की रेखा लगाना देखने लगता है। पक्षियों का घर लौटने का मंगल गान होने लगता है सृष्टि के उस रहस्यपूर्ण समय में जब न तो तीव्र, चौंका देने वाला आलोक था—न तो नेत्रों को ढँक लेने वाला तम था, तुम्हें देखने की—पहचानने की—चेष्टा की, और तुम्हे कुहक के रूप में देखा।

कामना—और देखते हुए भी आँखें बन्द थीं।

सन्तोष—मेरे पास कौन सम्बल था—कामना रानी!

कामना—ओह! मेरा भ्रम था!

सन्तोष—क्या तुम्हें दुःख है कामना।

कामना—मेरे दुःखों को पूछकर और दुःखी न बनाओ।

सन्तोष—नहीं कामना, क्षमा करो। तुम्हारे कपोलों के ऊपर और भौंहों के नीचे एक श्याम मंडल है, नीरव रोदन हृदय में और गम्भीरता ललाट में खेल रही है! और भी एक लज्जा नाम की नई वस्तु पलकों के परदे में छिपी है, जो कुछ ऐसी मर्म की बातें जानती है, जिन्हें हम लोग पहले नहीं जानते थे।

कामना—जाने दो सन्तोष! तुम्हें अब इससे क्या! तुम तो सुखी हो।

सन्तोष—सुखी। हाँ मैं सुखी हूँ—मेरी एक ही अवस्था है। दुःखों की बात उनसे पूछो, तुम्हारी राज्य-कल्पना से जिनकी मानसिक शुभेच्छा एक बार ही नष्ट हो गई है। जिन पर कल्याण की मधु-वर्षा नहीं होती; उन अपनी प्रजाओं से पूछो; और पूछो अपने मन से।

कामना—जाओ सन्तोष, मुझे और दुखी न बनाओ।

(सिर झुका लेती है)

सन्तोष—अच्छा रानी, मैं जाता हूँ। (जाता है)

कामना—(कुछ देर बाद सिर उठाकर) क्या चला गया—

(दासी पात्र लिये आती है, और सखियाँ जाती हैं)

१—रानी, मन कैसा है?

२—मैं बलिहारी, यह उदासी क्यों है?

कामना—यह पूछकर तुम क्या करोगी?

१—फिर किससे कहोगी?

२—पगली! देखती नहीं? स्त्री होकर भी नहीं जानती, नहीं समझती।

१—रानी, देश में अन्य बहुत-से युवक हैं।

कामना—तो फिर ?

२—ब्याह कर लो रानी !

कामना—चुप मूर्ख ! मैं पवित्र कुमारी हूँ। मैं सोने से लदी हुई, परिचारिकाओं से घिरी हुई, अपने अभिमान-साधना की कठिन तपस्या करूँगी। अपने हाथों से जो विडम्बना मोल ली है, उसका प्रतिफल कौन भोगेगा ? उसका आनंद, उसका ऐश्वर्य और उसकी प्रशंसा, क्या इतना जीवन के लिए पर्याप्त नहीं है ?

१—परंतु—

२—जीवन का सुख, स्त्री होने का उच्चतम अधिकार कहाँ मिला ? रानी, तुम किसी पुरुष को अपना नहीं बना सकीं।

कामना—देखती हूँ; तू बहुत बढ़ी चली जा रही है। क्या तुझे—

१—क्षमा हो, अपराध क्षमा हो।

२—रानी, मुझे चाहे तीरों से छिदवा दो; परंतु मैं एक बात बिना कहे न मानूँगी। जब इस विदेशी विलास को तुम्हारे साथ देखती हूँ, तब मैं क्रोध से काँप उठती हूँ। कुछ वश नहीं चलता, इससे रोने लगती हूँ। बस, और क्या कहूँ।

कामना—प्यारी, तू उस बात को न सुना, उसे बधिरता के घने परदे में छिपी रहने दे। मेरे जीवन के निकटतम रहस्य को अमावास्या से भी काली चादर में छिपा रख। मैं रोना चाहती हूँ; पर रो नहीं सकती। हाँ—

२—अच्छा, मैं कुछ गाऊँ, जिसमें मन बहले।

कामना—सखी—

(गान)

जाओ, सखी, तुम जी न जलाओ,

हमें न सताओ जी।

१—तुम व्यर्थ रहीं बकती,

कामना—तुम जान नहीं सकतीं,

मन की कथा है कहने की नहीं

२—मत बात बनाओ जी।

१—समझोगी नहीं सजनी.

२—भव प्रेममयी रजनी,

भर-नैन सुधा-छवि चाख गई

अब क्या समझाओ जी। (विलास का प्रवेश)

विलास—रानी!

कामना—(सम्हलकर) क्यों विलास! यह नगर कैसा बसाया जा रहा है?

विलास—आज भयानक युद्ध होगा। कल बताऊँगा।

कामना—अच्छा खेल होगा, सभ्यता का तांडव नृत्य होगा। वीरता की तृष्णा बुझेगी, और हाथ लगेगा सोना!

विलास—व्यंग्य न करो रानी! विनोद आज मदिरा में उन्मत्त है; कोई सेनापति नहीं है।

कामना—तो मैं चलूँ?

विलास—मैं तो पूछ रहा हूँ।

कामना—अच्छी बात है, आज तुम्हीं सेनापति का काम करो। लीला और लालसा भी रणक्षेत्र में साथ जायँगी कि नहीं ?

(नेपथ्य में कोलाहल)

विलास—(बिगड़कर) स्त्रियों के पास और होता क्या है।

कामना—कुछ नहीं, अपना सब कुछ देकर ठोकरें खाना ! उपहास का लक्ष्य बन जाना !

विलास—इस समय युद्ध के सिवा और कुछ नहीं। फिर किसी दिन उपालम्भ सुन लूँगा। (वेग से जाता है)

(लीला और लालसा के साथ मद्यप विनोद का प्रवेश)

विनोद—रानी, सब पागल हैं।

कामना—एक तुमको छोड़कर विनोद।

विनोद—मैं तो कहता हूँ; दस घड़े रक्त के न बहाकर यदि एक पात्र मदिरा पी लो, सब कुछ हो गया।

लीला—रानी, देखो, यह सोने का जाल नया बनकर आया है।

कामना—बहुत अच्छा है।

लालसा—और यह सोने के तारों से बिनी हुई नई साड़ी तो देखी ही नहीं। (दिखाती है)

कामना—वाह ! कितनी सुंदर शिल्पकला है।

विनोद—इस देश से खूब सोना घर भेजा गया है। वहाँ नये-नये सौंदर्य-साधन बनाये जा रहे हैं। रानी, लाल रक्त गिराने से पीला सोना मिलने लगा। कैसा अच्छा खेल है।

कामना—बहुत अच्छा।

लालसा—आज विलास सेनापति होकर आक्रमण करने गये हैं, तो विनोद, तुम्हीं मेरे पटमंडप में चलो। मैं अकेली कैसे रहूँगी ?

विनोद—हाँ, यह तो अत्यंत खेद की बात है। परंतु कोई चिंता नहीं। चलो। (दोनों जाते हैं)

लीला—रानी !

कामना—लीला !

लीला—यह सब क्या हो रहा है ?

कामना—ऐश्वर्य और सभ्यता के परिणाम।

लीला—तुम रानी हो, इसको रोको।

कामना—मेरा स्वर्ण-पट्ट देखकर प्रथम तुम्हीं को इसकी चाह हुई, आकांक्षा हुई। अब क्या, देश में धनवान और निर्धन, शासकों का तीव्र तेज, दीनों की विनम्र दयनीय दासता, सैनिक-बल का प्रचंड प्रताप, किसानों की भारवाही पशु की-सी पराधीनता, ऊँच और नीच, अभिजात और बर्बर, सैनिक और किसान, शिल्पी और व्यापारी, और इन सभी के ऊपर सभ्य व्यवस्थापक—सब कुछ तो है। नये-नये संदेश, नये-नये उद्देश, नई-नई संस्थाओं का प्रचार, सब कुछ सोना और मदिरा के बल से हो रहा है। हम जागते में स्वप्न देख रहे हैं।

लीला—ओह ! (जाती है)

(दो सैनिक एक स्त्री को बाँधकर लाते हैं)

कामना—यह कौन है ?

सैनिक—युद्ध में यह बंदी बनाई गई है।

कामना—इसका अपराध ?

सैनिक—सेनापति के आने पर वह स्वयं निवेदन करेंगे। हम लोगों को आज्ञा हो, तो जायँ, युद्ध समाप्त होने के समीप है।

कामना—जाओ।

(दोनों जाते हैं)

स्त्री—तुम रानी हो ?

कामना—हाँ।

स्त्री—रानी बनने की साध क्यों हुई ? क्या आँखें इतनी रक्त-धारा देखने की प्यासी थीं ? क्या इतनी भीषणता के साथ तुम्हारा ही जयघोष किया जाता है ?

कामना—मेरे दुर्भाग्य से।

स्त्री—और तुम चुपचाप देखती हो।

कामना—तुम बंदी हो, चुप रहो।

(रक्तात्त-कलेवर विजयी विलास का प्रवेश)

विलास—जय, रानी की जय !

कामना—क्या शत्रु भाग गये ?

विलास—हाँ रानी।

कामना—अच्छा विलास, बैठो, विश्राम करो।

विलास—(देखकर) आहा ! यह अभी यहीं है। इसको मेरे पट-मंडप में न ले जाकर यहाँ किसने छोड़ दिया है ?

कामना—वह सैनिक इसे यहीं पकड़ लाया। परन्तु कहो तो विलास, इसे क्यों पकड़ा ?

विलास—तुमको रानी, राज्य करने से काम, इन पचड़ों में क्यों

पड़ती हो ? युद्ध में स्त्री और स्वर्ण, यही तो लूट के उपहार मिलते हैं। विजयी के लिये यही प्रसन्नता है। इसे मेरे यहाँ भेज दो।

कामना—विलास, तुमको क्या हो गया है ? मैं रानी हूँ, तुम्हारी शय्या सजाने की दासी नहीं।

स्त्री—दोहाई रानी की ! तुम्हारे राज्य के बदले भी मुझे ऐसा पुरुष नहीं चाहिये। मुझे बचाओ, यह नरपिशाच ! ओह—

(मुँह ढँकती है)

विलास—अच्छा, जाता हूँ। (सरोष प्रस्थान)

[पट-परिवर्तन]

तीसरा दृश्य

(पथ में लालसा)

लालसा—दारुण ज्वाला, अतृप्ति का भयानक अभिशाप ! मेरे जीवन का संगी कौन है ? मैं लालसा हूँ, जन्म-भर जिसका संतोष नहीं हुआ ! नगर से आ रही हूँ। प्रमदा के स्वतंत्रता-भवन के आनन्द-विहार से भी जी नहीं भरा, कोई किसी को रोक नहीं सकता और न तो विहार की धारा में लौटने की बाधा है। उच्छृङ्खल उन्मत्त विलास—मदिरा की विस्मृति। विहार की श्रान्ति। फिर भी लालसा ! (देखकर) अरे मैं घूमती-घूमती किधर निकल आई ? कहीं बहुत दूर। यदि कोई शत्रु आ गया, तो (ठहरकर सोचती है) क्या चिंता।

(एक शत्रु सैनिक का प्रवेश)

सैनिक—तुम कौन हो ?

लालसा—मैं, मैं ?

सैनिक—हाँ, तुम।

लालसा—सेनापति विलास की स्त्री।

सैनिक—जानती हो, कल तुम्हारे सेनापति ने मेरी स्त्री को पकड़ लिया है? आज तुमको यदि मैं पकड़ ले जाऊँ?

लालसा—(मुसकिराकर) कहाँ ले जाओगे?

सैनिक—यह क्या?

लालसा—कहाँ चलूँ, पूछती तो हूँ। तुम्हारे सदृश पुरुष के साथ चलने में किस सुंदरी को शंका होगी?

सैनिक—इतना अधःपतन! हम लोगों ने तो समझा था कि तुम्हारे देश के लोग केवल स्वर्ण-लोलुप शृगाल ही हैं; परन्तु नहीं, तुम लोग तो पशुओं से भी गये-बीते हो। जाओ—

लालसा—तो क्या तुम चले जाओगे? मेरी ओर देखो।

सैनिक—छिः! देखने के लिये बहुत-सी उत्तम वस्तुयें हैं। सरल शिशुओं की निर्मल हँसी, शरद का प्रसन्न आकाश-मंडल, वसंत का विकसित कानन, वर्षा की तरंगिणी-धारा, माता और संतानों का विनोद देखने से जिसे छुट्टी हो, वह तुम्हारी ओर देखे।

लालसा—तुम्हारे वाक्य मेरी कर्णेन्द्रियों को माँग रहे हैं। मैं कैसे छोड़ दूँ, कैसे न दूँ। ठहरो, मुझे इस सम्पूर्ण मनुष्यत्व को आँखों से देख लेने दो।

सैनिक—जाओ रमणी, लौट जाओ! तुम्हारा सेना-निवेश दूर है।

लालसा—फिर तुम्हें इतने रूप की क्या आवश्यकता थी, जब हृदय ही न था? (तिरस्कार से देखता हुआ सैनिक जाता है)

लालसा—(स्वगत) चला जायगा। यों नहीं.(प्रकट) अच्छा तो सुनो। क्या तुम अपनी स्त्री को भी नहीं छुड़ाना चाहते ?

सैनिक—(लौटकर) अवश्य छुड़ाना चाहता हूँ—प्राण भी देकर।

लालसा—अच्छा चलो, मैं तुम्हारी सहायता करूँगी। तुम्हारे शिष्ट आचरण का प्रतिदान करूँगी। चलोगे, डरते तो नहीं ?

सैनिक—डर क्या है ? चलूँगा। (दोनों जाते हैं। विलास का प्रवेश)

विलास—यह उन्मत्त विलास-लालसा ! वक्षःस्थल में प्रबल पीड़ा ! ओह ! अविश्वासिनी स्त्री, तूने मेरे पद की मर्यादा, वीरता का गौरव और ज्ञान की गरिमा सब डुबा दी ! जी चाहता है, इस अतृप्त हृदय में छुरा डालकर नचा दूँ। (ठहरकर) परंतु विलास ! विलास ! तुझे क्या हो गया है ? तुझे इससे क्या ? राज्य यदि करना है, तो इन छोटी-छोटी बातों पर क्यों ध्यान देता है ? अपनी प्रतिभा से शासन कर ! (विवेक आता है)

विवेक—आहा ! मंत्री और सेनापति महाशय, नमस्कार। परन्तु नहीं, जब मंत्री और सेनापति दोनों पद-पदार्थ एक आधार में हैं, तब राजा क्या कोई भिन्न वस्तु है। दोनों को सम्मिलित शक्ति ही तो राज-शक्ति है। अतएव हे राज-मंत्री-सेनापति ! हे दिक्-काल-पदार्थ ! हे जन्म-जीवन और मृत्यु ! आपको नमस्कार !

विलास—(विवेक का हाथ पकड़कर) बूढ़े, सच बता, तू पागल है या कोई बना हुआ चतुर व्यक्ति ? यदि तुझे मार डालूँ !

विवेक—(हँसकर) अरे जिसे इतनी पहचान नहीं कि मैं पागल हूँ या स्वस्थ, वह राज-कार्य क्या करेगा ?

विलास—अच्छा, तुम यहाँ क्या करने आये हो ?

विवेक—लड़ाई कभी नहीं देखी थी, बड़ी लालसा थी, उसी से—

विलास—तो तू ही वह व्यक्ति है, जिसने बहुत-से घायलों को पास की अमराई में इकट्ठा कर रक्खा है और उनकी सेवा करता है ?

विवेक—यह भी यदि अपराध हो, तो दंड दीजिये; नहीं तो समझ लीजिये कि पागलपन है।

विलास—फिर विचार करूँगा, इस समय जाता हूँ।

विवेक—विचार करते जाइये, कलेजा फाड़ते जाइये, छुरे चलाते रहिये और विचार करते रहिये। विचार से न चूकिये, नहीं तो—

विलास—चुप !

विवेक—आहा, विचार और विवेक को कभी न छोड़िये, चाहे किसी के प्राण ले लीजिये, परंतु विचार करके।

(विलास सरोष चला जाता है, विवेक दूसरी ओर जाता है)

[पट-परिवर्तन]

चौथा दृश्य

स्थान—खेत में करुणा की कुटी

(संतोष अन्न की बालें एकत्रित कर रहा है। दुर्वृत्त आता है)

दुर्वृत्त—क्यों जी, इस खेत का तुम कितना कर देते हो ?

संतोष—कर !

दुर्वृत्त—हाँ। रक्षा का कर !

संतोष—क्या इस मुक्त प्राकृतिक दान में भी किसी आपत्ति का

डर है ? और क्या उन आपत्तियों से तुम किसी प्रकार इनकी रक्षा भी कर सकते हो ?

दुर्वृत्त—मुझे विवाद करने का समय नहीं है।

संतोष—तब तो मुझे भी छुट्टी दीजिये, बहुत काम करना है।

दुर्वृत्त—(क्रोध से देखता हुआ) अच्छा जाता हूँ।

(जाता है। करुणा आती है)

करुणा—भाई, तुम्हें काम करते बहुत विलम्ब हुआ। थक गये होगे—चलो, कुछ खा लो।

संतोष—बहन ! इस गाँठ को भीतर धर दूँ, तो चलूँ। (परिश्रम से थका हुआ संतोष बोझ उठाता है। गिर पड़ता है। उसके पैर में चोट आती है। करुणा उसे उठाकर भीतर ले जाती है)

(एक ओर से वन-लक्ष्मी दूसरी ओर से महत्त्वाकांक्षा का प्रवेश)

वन-लक्ष्मी—देखो, तुम्हारी कर लेने की प्रवृत्ति ने अन्नों के सत्व को हलका कर दिया, कृषक थकने लगे हैं। खेतों को सींचने की आवश्यकता हो गई। उर्वरा पृथ्वी को भी कृत्रिम बनाया जाने लगा है।

महत्त्वाकांक्षा—विलास के लिए साधन कहाँ से आवेंगे ? यह जंगलीपन है। अकर्मण्य होकर प्रकृति की पराधीनता क्यों भोग करें। जब शक्ति है, फिर अभाव क्यों रह जाय ?

वन-लक्ष्मी—विलास की महत्त्वाकांक्षा ! तुम्हारा कहीं अन्त भी है। कब तक और कहाँ तक तुम मानव-जाति को झगड़ते देखना चाहती हो ?

महत्त्वाकांक्षा—प्रकृति अपनी सीमा क्यों नहीं बनाती। फूलों की कोमलता और उनका सौरभ एक ही प्रकार का रहने से भी तो काम

चल जाता। फिर इतनी शिल्पकला, पंखड़ियों की विभिन्नता, रंग की सजावट क्यों ? तब हम अनन्त साधनों से अपने सुख को अधिकाधिक सम्पूर्ण क्यों न बनावें।

वन-लक्ष्मी—दौड़ाओ काल्पनिक महत्त्व के लिए। अतृप्ति के कशाघात से उत्तेजित करो। परन्तु प्रकृति के कोष से अनावश्यक व्यय करने का किसको अधिकार है ? यह ऋण है। इसे कभी भी कोई चुका सकेगा ? प्राकृतिक पदार्थों का अपव्यय करके भावी जनता को दरिद्र ही नहीं बनाया जा रहा है, प्रत्युत उनकी वृत्ति का उद्गम ही बन्द कर देने का उपक्रम है। वे अपने पूर्वजों के इस ऋण को चुकाने के लिए भूखों मरेंगे।

महत्त्वाकांक्षा—मरें; कौन निर्बलों का जीवन अच्छा समझता है ! देखो यहीं न, संतोष और करुणा। इनकी क्या अवस्था है।

वन-लक्ष्मी—इनपर तुम्हें दया नहीं; ये सच्चे हैं, सृष्टि की अमूल्य सम्पत्ति हैं। इनकी रक्षा करो।

महत्त्वाकांक्षा—(हँसती है) तुम सरल हो।

वन-लक्ष्मी—तुम कुटिलता में ही सौन्दर्य देखती हो।

महत्त्वाकांक्षा—तरल जल की लहरें भी सरल नहीं। बाँकपन ही तो सौन्दर्य है। मैं उसी को मानती हूँ। करुणा और संतोष सृष्टि की दुर्बलतायें हैं। मेरे पास उनके लिए सहानुभूति नहीं।

(जाती है)

वन-लक्ष्मी—मेरा मृदुल कुटुम्ब ! मेरा कोमल शृंगार ! इस क्रूर महत्त्वाकांक्षा से झुलस रहा है ! मैं उन्हें आलिंगन करूँगी। (खेत में

बैठकर एक तृणकुसुम को देखती हुई) तू कुछ कह रहा है। तेरा कुछ संदेश है। तेरी लघुता एक महान रहस्य है। मैं तेरे साथ स्वर मिलाकर गाऊँगी।

(गाती है)

पृथ्वी की श्यामल पुलकों में सात्विक स्वेद विंदु-रंगीन।
नृत्य कर रहा हिलता हूँ मैं मलयानिल से हो स्वाधीन॥

आँधी की बहिया बह जाती चिढ़ कर चल जाती चपला।
मैं यों ही हूँ, ये कोई भी मेरी हँसी न सकते छीन॥

तितली अपना गिरा और भूला-सा पंख समझती है।
मुझे छोड़ देती, मेरा मकरन्द मुझी में रहता लीन॥

मधु-सौरभ वाले फल-फूलों को लुट जाने का डर हो।
मैं झूला झूलती रही हूँ—बनी हुई अम्लान नवीन॥

व्यथित विश्व का राग-रक्त क्षत हूँ, मुझको पहचानो तो।
सुधा-भरी चाँदनी सुनाती मुझको अपनी जीवन-वीन॥

[पट-परिवर्तन]

पाँचवाँ दृश्य

स्थान—फूलों के द्वीप में एक नागरिक का घर।

पिता—बेटा, इतनी देर हुई, अभी तक सोते रहोगे, क्या आज खेतों में हल न जायगा ?

लड़का—(आँख मलता हुआ) पहले एक प्याली मदिरा, फिर दूसरी बात, (अँगड़ाई लेकर) ओह, बड़ी पीड़ा है।

पिता—लड़के ! तुझे लज्जा नहीं आती ! मुझसे मदिरा माँगता है ?

लड़का—तो माँ से कह दो, दे जाय। (माता का प्रवेश)

माता—क्यों, आज भी सबेरा हो गया, अभी सुनार के यहाँ नहीं गये, हल पकड़े खड़े हो? इससे तो अच्छा होता कि बैलों के बदले तुम्हीं इसमें जुतते। आज के उत्सव में चार स्त्रियों के सामने क्या पहन कर जाऊँगी?

पिता—तो अच्छी बात है, सोने का गहना बैठकर खाना और चबाना मेरी सूखी हड्डियाँ! लड़के को चौपट कर डाला। वह मुझसे मदिरा माँगता है, और तुम माँगती हो आभूषण।

लड़का—(लेटा हुआ) तुम दोनों कैसे मूर्ख बकवादी हो। एक प्याली देने में इतनी देर, इतना झंझट!

माता—तुझ-सा निखट्टू पति मेरे ही भाग्य में बदा था! मैं यदि—

पिता—हाँ, हाँ, कहो, 'यदि' क्या? यही न कि दूसरे की स्त्री होती, तो गहनों से लद जाती; परंतु उसके साथ पापों से भी—

लड़का—देखो, मुझे एक प्याला दे दो, और एक-एक तुम लोग—बस, झगड़ा मिट जायगा। जो बैल होंगे, आप ही कुछ देर में खेत पर पहुँच जायँगे।

पिता—कुलांगार! यह धृष्टता मुझसे सही न जायगी।

लड़का—तो लो, मैं जाता हूँ। युद्ध में सैनिक बनकर आनंद करूँगा। तुम दोनों के नित्य के झगड़े से तो छुट्टी मिल जायगी।

(उठता है)

माता—यह बाप है कि हत्यारा? एक प्याला मदिरा नहीं दे देता। लड़के को मरने के लिए युद्ध में भेजना चाहता है। जान पड़ता है, इसने दूसरे बाल-बच्चे-स्त्री आदि बना लिए हैं; अब हम लोगों की

आवश्यकता नहीं रही। एक को तो युद्ध में भेज ही दिया दूसरे को भी—

पिता—वह तेरे लिए सुवर्ण लाने गया है। पिशाचिनी! तू माँ है, तुझे आभूषणों की इतनी आवश्यकता!

लड़का—अच्छा, तो फिर जाता हूँ। (उठता और गिर पड़ता है फिर माँ से कहता है)

तू ही दे दे, इस खेतिहार गँवार को जाने दो।

(पिता क्रोध से चला जाता है)

माता—अच्छा लो, पर फिर न माँगना। (देती है)

लड़का—(लेटा हुआ) नहीं आँख खुलने तक नहीं। अभी एक नींद सो लेने दो। (लेटता है)

माता—कैसा सीधा लड़का है। (हँसती है)

[पट-परिवर्तन]

छठाँ दृश्य

स्थान—नवीन नगर की एक गली

(नागरिकों का प्रवेश)

१ नागरिक—सब ठीक है! कामना ने यदि उन विचार-प्रार्थियों के कहने से कुछ भी इस नगर पर अत्याचार किया, तो हम लोग उसका प्रतिकार करेंगे!

२ नागरिक—वह क्या?

१—विलास को यहाँ का राजा बनावेंगे और कामना को बन्दी!

२—यहाँ तक ?

१—बिना राजा के हम लोगों का काम नहीं चलेगा। यह तुच्छ स्त्री कोमल हृदय की पुतली शासन का भेद क्या जानेगी !

२—क्या और लोग भी इसके लिए प्रस्तुत है ?

१—सब ठीक है, अवसर की प्रतीक्षा है। चलो, आज दम्भदेव के यहाँ उत्सव है। तुम चलोगे कि नहीं ?

२—हाँ-हाँ, चलूँगा। (दोनों जाते हैं)

(करुणा का सन्तोष को लिए हुए प्रवेश)

करुणा—किससे पूछूँ—भाई सन्तोष, थोड़ी देर यहीं बैठो, मैं क्रूर का घर पूछ आती हूँ। बड़ी पीड़ा होगी। आह-आह !

(सहलाती है)

सन्तोष—करुणे ! मैं तुम्हारे अनुरोध से यहाँ चला आया हूँ। मुझे तो इस वैद्य के नाम से भी निर्वेद होता है।

करुणा—मेरे लिए भाई—मेरे लिए ! बैठो, मैं आती हूँ—

(जाती है)

(एक नागरिक का प्रवेश)

नागरिक—(सन्तोष को देखकर) तुम कौन हो जो ?

सन्तोष—मनुष्य—और दुखी मनुष्य !

नागरिक—तब यहाँ क्या है जो किसी के घर पर बिना पूछे बैठ गए ?

सन्तोष—यह भी अपराध है ? मैं पीड़ित हूँ, इसी से थोड़ा विश्राम करने के लिए बैठ गया हूँ।

नागरिक—अभी नगर-रक्षक तुम्हें पकड़कर ले जायगा। क्योंकि तुमने मेरे अधिकार में हस्तक्षेप किया है। बिना मेरी आज्ञा लिए यहाँ बैठ गये। क्या यह कोई धर्मशाला है ?

सन्तोष—मैं तो प्रत्येक गृहस्थ के घर को धर्मशाला के रूप में देखना चाहता हूँ, क्योंकि इसे पापशाला कहने में संकोच होता है !

नागरिक—देखो इस दुष्ट को। अपराध भी करता है और गालियाँ भी देता है। उठ जा यहाँ से, नहीं तो धक्के खायगा !

सन्तोष—हे पिता ! तुम्हारी सन्तान इतनी बँट गई है।

नागरिक—क्या हिस्सा भी लेगा ? उठ-उठ—चल—

सन्तोष—भाई, मैं बिना किसी के अवलम्ब के चल नहीं सकता। मेरी बहन आती है, मैं चला जाऊँगा।

नागरिक क्या तेरी बहन !

सन्तोष—हाँ—

नागरिक—(स्वगत) आने दो, देखा जायगा।

(दौड़ती हुई करुणा का प्रवेश, पीछे मद्यप दुर्वृत्त)

दुर्वृत्त—ठहरो सुन्दरी ! मुझे विश्वास है कि तुमको न्यायालय की शरण लेनी पड़ेगी—मैं व्यवस्था बतलाऊँगा, तुम्हारी सहायता करूँगा, तुम सुनो तो। हाँ—क्या अभियोग है ? किसी ने तुम्हें—ऐं !

करुणा—(भयभीत) भाई सन्तोष ! देखो यह मद्यप।

दुर्वृत्त—चलो, तुम्हें भी पिलाऊँगा। बिना इसके न्याय की बारीकियाँ नहीं सूझतीं—हाँ, तो फिर एक चुम्बन भी लिया—यही न !

करुणा—नीच दुराचारी !

सन्तोष—क्यों नागरिक ! यही तुम्हारा सभ्य व्यवहार है ?

दुर्वृत्त—अनधिकार चेष्टा—मूर्ख ! तू भी न्यायालय से दंड पावेगा —तुम साक्षी रहना नागरिक !

नागरिक—(करुणा की ओर देखता हुआ) सुन्दर है ! हाँ-हाँ, यह तो अनधिकार चेष्टा प्रारम्भ से ही कर रहा है; बिना मुझसे पूछे यहाँ बैठ गया और बात भी छीनता है।

सन्तोष—मैं चिकित्सा के लिए यहाँ आया हूँ क्यों। मुझे तुम लोग तंग कर रहे हो—चलो करुणा, हम लोग चलें।

दुर्वृत्त—वाह ! चलो चलें ! ए—तुम्हें परिचय देना होगा, तुम असभ्य बर्बर यहाँ किसी बुरी इच्छा से आये होगे। नागरिक ! बुलाओ शान्तिरक्षक को।

सन्तोष—(हँसकर) शान्ति तुम्हारे घर कहीं है भी जो तुम उसकी रक्षा करोगे ? बाबा, हम लोग जाते हैं, जाने दो।

दुर्वृत्त—परिचय देना होगा तब—

करुणा—परिचय देने में कोई आपत्ति नहीं है। मैं मृत शान्तिदेव की बहन हूँ।

(दुर्वृत्त आँख फाड़कर देखता है)

नागरिक—तब यह तुम्हारा भाई कैसे ? इसमें कुछ रहस्य है।

दुर्वृत्त—तुम क्या जानो; चुप रहो (करुणा से) हाँ, तुम्हारा तो बड़ा भारी अभियोग है, न्यायालय अवश्य तुम्हें सहायता देगा। क्यों, तुमने शान्तिदेव का धन कुछ पाया ? अकेली लालसा उसे नहीं भोग सकती। तुम्हारा भी उसमें कुछ अंश है।

सातवाँ दृश्य

स्थान—आक्रांत देश का एक गाँव

(एक बालिका और विवेक)

बालिका—आज तक तो हमारे ऊपर अत्याचार होता रहा है; परंतु कोई इतनी मित्रता नहीं दिखलाने आया। तू आज छल करने आया है।

विवेक—नहीं माँ, जा बड़े-बूढ़ों को बुला ला।

बालिका—परंतु—

विवेक—हाय रे पाप! इन निरीह बालकों में भी विश्वास का अभाव हो गया है। विश्वास करो माँ, बुला लो।

(बालिका जाती है, चार वृद्ध और युवक आते हैं)

विवेक—मैं उसी शापित देश का हूँ, जिसमें सोने की ज्वाला धधक उठी है, मदिरा की बन्या बाढ़ पर है। क्या मुझ पर विश्वास करोगे?

युवक—कहो, तुम्हारा प्रयोजन सुन लें।

विवेक—हमारे और तुम्हारे देश की सीमा में एक नया राज्य स्थापित हो गया है। वह हमारे देश के विद्रोहियों का एक घृणित संगठन है। उसने अत्याचार का ठेका ले लिया है। उससे क्या हम-तुम दोनों बचना चाहते हैं?

युवक—परंतु उपाय क्या है?

विवेक—हम लोगों को भाई समझकर मित्र-भाव की स्थापना करो, और इनके अत्याचारों से रक्षा करो। हम परस्पर दूसरे के सहायक हों।

युवक—किस प्रकार?

विवेक—आज न्यायालय में विचार होनेवाला है, और तुम्हारे देश के जो दो बंदी हुए हैं, उन्हें दंड मिलेगा। हम लोगों में से बहुतेरे उसके विरुद्ध हैं। यदि तुम लोग भी हमारी सहायता करो, तो इस भीषण आतंक से सबकी रक्षा हो।

युवक—हम लोग ठीक समय पर पहुँचेंगे। परंतु वहाँ तक जाने कैसे पावेंगे?

विवेक—हमारी सेवा से जितने आहत अच्छे हो चुके हैं, उन्हीं लोगों के दल के साथ। और, इस अच्छे कर्म के लिए बहुत सहायक मिलेंगे।

युवक—अच्छा, तो हम जाते हैं।

विवेक—तुम्हारा कल्याण हो।

(युवक और उसके साथी जाते हैं, दूसरी ओर से वही बालिका दौड़ती हुई आती है। पीछे दो उन्मत्त मद्यप हैं)

बालिका—दोहाई है, बचाओ! बचाओ!

मद्यप सैनिक—सुंदरी इतनी दौड़-धूप करने पर तो प्रेम का आनंद नहीं रहता। माना कि यह भी एक भाव है; पर वह मुझे रुचिकर नहीं। सुन तो लो— (पकड़ता है)

बालिका—अरे, तुम क्या मनुष्यता को भी मदिरा के साथ घोलकर पी गये हो!

सैनिक—मदिरा के नाम से वही तो पीता हूँ।

विवेक—(आगे बढ़कर) क्यों, तुम वीर सैनिक हो न?

सैनिक—क्या इसमें भी संदेह है?

विवेक—कायर ! छोड़ दे नहीं तो दिखा दूँगा कि इन सूखो हड्डियों में कितना बल है।

सैनिक—जा पागल ! तू क्यों मरना चाहता है ?

विवेक—दूसरे की रक्षा में, पाप का विरोध और परोपकार करने में प्राण तक दे देने का साहस किस भाग्यवान् को होता है ? नीच ! आ, देखूँ तो !

(सैनिक तलवार से प्रहार करने को उद्यत होता है। विवेक सामने तन कर खड़ा होता और उसकी कलाई पकड़ लेता है)

सैनिक—अब छोड़ दो, हाथ टूटता है।

विवेक—(छोड़कर) इसी बल पर इतना अभिमान ! जा, अब सीधा हो जा। देश का कलंक धोने में हाथ बँटा, कल परीक्षा होगी।

सैनिक—पिता ! क्षमा करो, जो आज्ञा होगी, मैं और मेरे साथी, सब वही करेंगे।

विवेक—स्मरण रखना।

(दोनों सिर झुकाकर जाते हैं)

[पट-परिवर्तन]

आठवाँ दृश्य

स्थान—सैनिक न्यायालय

(रानी और सैनिक लोग बैठे हैं। एक ओर से विलास, दूसरी ओर से लालसा का प्रवेश)

विलास—रानी, यह बंदी स्त्री बड़ी भयानक है। हमारी सेना के समाचार लेने आई थी। इसको दंड देना चाहिये।

लालसा— और एक व्यक्ति मेरे मंडप में भी है। वह भी कुछ ऐसा ही जान पड़ता है। दोनों का साथ ही विचार हो।

(रानी के संकेत करने पर चार सैनिक जाते और दोनों को ले आते हैं। शत्रु-सैनिक और स्त्री, दोनों एक दूसरे को देखते और चीत्कार करते हैं)

विलास—यह स्त्री प्राणदंड के योग्य है। इसने सेना का सब भेद जान लिया था। यदि यह पकड़ न ली जाती, तो उस दिन के युद्ध में हम लोगों को पराजित होना पड़ता।

लालसा—और सीमा पर मैं इस पुरुष से मिली। यदि मैं इसे भुलावा देकर न ले आती, तो यह मेरा बड़ा अपमान करता, जो इस जाति के लिए बड़े कलंक की बात होती।

रानी—विलास!

विलास—कुछ नहीं रानी, इन्हें प्राणदंड?

लालसा—इनसे पूछने की क्या आवश्यकता है? हम लोगों का कहना ही क्या इनके लिए यथेष्ट प्रमाण नहीं है?

सब सैनिक—हाँ, हाँ, सेनापति का अनुरोध अवश्य माना जाय।

कामना—तब मुझे कुछ कहना नहीं है।

विलास—(सैनिकों से) दोनों को इसी वृक्ष से बाँध दो, और तीर मारो।

स्त्री क्यों शत्रु-सेनापति! स्त्री पर अत्याचार न कर पाने पर उसका प्राण लेना ही न्याय है? परंतु प्राण तुम ले सकते हो, मेरा अमूल्य धन नहीं।

शत्रु-सैनिक—सुंदरी लालसा, तुम स्त्री हो या पिशाचिनी?

लालसा—जा, जा, मर।

(दोनों को बाँधकर तीर मारे जाते हैं)   (कई प्रार्थियों का प्रवेश)

सैनिक रानी, द्वेष ने मुझे सोते में छुरा मारकर घायल किया है। न्याय कीजिये।

दूसरा—प्रमदा मेरे आभूषणों की पेटी लेकर दुर्वृत्त के साथ भाग गई। उससे मेरे आभूषण दिला दिये जायँ।

तीसरा—रानी, मैं बड़ा दुखी हूँ। मेरा मदिरा का पात्र किसी ने चुरा लिया। मैं बड़े कष्ट से रात बिताता हूँ।

चौथा—नवीना मेरी विश्वासपात्र प्रेमिका बनकर गहने के लोभ से स्वर्णभूति के साथ जाने के लिए तैयार है। उसे समझा दिया जाय, अन्यथा मैं आत्महत्या करूँगा।

पाँचवाँ—रानी, मेरा लड़का सब धन बेंच कर मदिरा पी आता है उससे मेरा संबंध छुड़ा दिया जाय।

एक स्त्री—मुझे विश्वास देकर, कौमार-भंग करके अब यह मद्यप मुझसे ब्याह नहीं करता।

एक दूत—(प्रवेश करके) जिस नवीन नगर की प्रतिष्ठा कुछ लोगों ने की थी, जिसमें बहुत-से अपराधी जाकर छिपे थे, वह नगर अकस्मात् भूकम्प से भूगर्भ में चला गया !

रानी—ठहरो। मुझे पागल न बनाओ। अपराधों की आँधी ! चारों ओर कुकर्म ! ओह !

(एक आठ वर्ष का बालक दौड़ा आता और दंडितों के शवों पर गिर पड़ता है। कामना उठकर खड़ी हो जाती है)

कामना –बालक, तुम कौन हो ?

बालक (रोता हुआ) मेरी मा, मेरे पिता –

कामना—क्यों विलास, यह क्या हुआ ?

लालसा –ठीक हुआ।

कामना—लालसा, चुप रहो। तुम न मंत्री हो, और न सेनापति।

लालसा –हाँ, मैं कुछ नहीं हूँ—तो फिर—

विलास—उन्हें उपयुक्त दंड दिया गया।

कामना—यदि राजकीय शासन का अर्थ हत्या और अत्याचार है, तो मैं व्यर्थ रानी बनना नहीं चाहती। मेरी प्रजा इस बर्बरता से जितना शीघ्र छुट्टी पावे, उतना ही अच्छा। (मुकुट उतारती हुई) यह लो, इस पाप-चिह्न का बोझ अब मैं नहीं वहन कर सकती। यथेष्ट हुआ। प्यारे देशवासियो, लौट चलो, इस इन्द्रजाल की भयानकता से भागो। मदिरा से सिंचे हुए चमकीले स्वर्ण-वृत्त की छाया से भागो।

(सिंहासन से हटती है)

(विवेक का उन्मत्त भाव से प्रवेश। कामना बालक को गोद में लेती है)

विवेक—बहुत दिन हुए, जब मैंने कहा था कि 'भागो-भागो'। तब तुम्हीं सब लोगों ने कहा था कि 'पागल है', और मैं पागल बन गया। देखकर) कामना, आहा मेरी पगली लड़की! आ, मेरी गोद में आ—चल, हम लोग वृक्षों की शीतल छाया में लौट चलें।

(कामना दौड़कर विवेक से लिपट जाती है)

विनोद –मदिरा और स्वर्ण के द्वारा हम लोगों में नवीन अपराधों की सृष्टि हुई, और हुई एक महान् माया-स्तूप की रचना। हमारे

अपराधों ने राजतंत्र की अवतारणा की। पिता की सदिच्छा, माता का स्नेह, शील का अनुरोध हम लोगों ने नहीं माना। तब अवश्य दंड के सामने सिर झुकाना पड़ेगा। कामना, हम सब तुम्हारे साथ हैं।

विलास—सज्जनो! सैनिको! देश दरिद्र है, भूखा है। क्या तुम लोग इन देश-द्रोहियों के पीछे चलोगे? यह भी क्या खेल है?

विवेक खेल था, और खेल ही रहेगा। रोकर खेलो चाहे हँसकर। इस विराट् विश्व और विश्वात्मा की अभिन्नता, पिता और पुत्र, ईश्वर और सृष्टि, सब को एक में मिलाकर खेलने की सुखद क्रीड़ा भूल जाती है; होने लगता है विषमता का विषमय द्वंद। तब सिवा हाहाकार और रुदन के क्या फैलेगा? हँसने का काम भूल गये। पशुता का आतंक हो गया। मनुष्यता की रक्षा के लिए, पाशवी वृत्तियों का दमन करने के लिए राज्य की अवतारणा हो गई; परन्तु उसकी आड़ में दुर्दमनीय नवीन अपराधों की सृष्टि हुई। इसका उद्देश तब सफल होगा, जब वह अपना दायित्व कम करेगी—जनता को, व्यक्ति को, आत्मसंयम और आत्मशासन सिखाकर विश्राम लेगी। जब अपराधों की मात्रा घटेगी और क्रमशः समूल नष्ट होगी, तब संघर्षमय शासन स्वयं तिरोहित होगा। आत्मप्रतारको! उस दिन की प्रतीक्षा में कठोर तपस्या करनी होगी, जिस दिन ईश्वर और मनुष्य, राजा और प्रजा, शासित और शासकों का भेद विलीन होकर विराट् विश्व, जाति और देश के वर्णों से स्वच्छ होकर एक मधुर मिलन-क्रीड़ा का अभिनय करेगा।

विनोद—आओ, हम सब उस मधुर मिलन के योग्य हों। उस अभिनय का मंगल-पाठ पढ़ें।

(अपना स्वर्णपट्ट और आभूषण उतारकर फेंकता है । लीला भी उसका अनुकरण करती है)

लीला—जितने भूले-भटके होंगे, वे इन्हीं पागलों के पीछे चलेंगे। हम अपने फूलों के द्वीप से काँटों को चुनकर निकाल बाहर करेंगे।

(बहुत-से लोग अपने स्वर्ण-भूषण और मदिरा के पात्र तोड़ते हैं। विलास और लालसा आश्चर्य के भाव से देखते हैं)

विलास—सैनिको, तुम्हारी क्या इच्छा है ? तुम वीर हो। क्या तुम इन्हीं का-सा दीन और निरीह जीवन बिताओगे ? क्या फिर उसी दुःख-पूर्ण देश में जाओगे, जहाँ न तो सोने के पान-पात्र हैं, और न माणिक के रंग की मदिरा ?

कुछ लोग—हम लोग यहीं नगर बसाकर रहेंगे।

एक—और तुम हमारे राजा बनो।

(वह गिरा हुआ मुकुट उसे पहनाता है। लालसा भी रानी का स्थान ग्रहण करने के लिये आगे बढ़ती है। 'ठहरो-ठहरो' कहते हुए दोनों ओर से सैनिकों के साथ संतोष का प्रवेश)

विवेक—सन्तोष ! तुमने बहुत विलम्ब किया।

आगन्तुक सैनिक—क्या, यह हत्या ? तुम हत्या करके भी यह साहस करते हो कि हम लोग तुम्हें अपना सर्वस्व मानें ! यह ठीक है कि हम लोगों को विधि-निषेधात्मक एक सर्वमान्य सत्ता की अब आवश्यकता हो गई है; परन्तु तुम कदापि इसके योग्य नहीं हो। सोने से लदी हुई लालसा रानी ! और मदिरा से उन्मत्त विलास राजा !! आश्चर्य !!!

(विलास के साथी सैनिक भो स्वर्ण और अन्न रख देते हैं)

विलास—तब लालसा ?

लालसा—अनंत समुद्र में, काल के काले परदे में, कहीं तो स्थान मिलेगा—चलो विलास !

(दोनों जाते हैं

कामना—मेरे सन्तोष ! प्रिय सन्तोष !

सन्तोष—मेरी मधुर कामना—

(कामना का हाथ पकड़ लेता है)

(परिवर्तित दृश्य। समुद्र में नौका पर विलास और लालसा। सब नागरिक उस पर स्वर्ण फेंकते हैं। नाव डगमगाती है, लालसा का क्रन्दन—'सोने से नाव डूबी, अब नहीं, बस'। तुमुल तरंग। परिवर्तित दृश्य में अंधकार। दूसरी ओर आलोक। फूलों की वर्षा)

(समवेत स्वर से गान)

खेल लो नाथ, विश्व का खेल।

राजा बनकर अलग न बैठो, बनो नहीं अनमेल ॥
वही भाव लेगी फिर जनता, भूल जायगी सारी समता।
कहाँ रही प्यारी मानवता, बढ़ी फूट की बेल ॥
रुदन, दुःख, तम-निशा, निराशा, इन द्वंदों का मिटे तमाशा।
स्मित आनंद उषा औ' आशा, एक रहें कर मेल ॥
हम सब हैं हो चुके तुम्हारे, तुम भी अपने होकर प्यारे।
आओ, बैठो साथ हमारे, मिल कर खेलें खेल ॥

[यवनिका-पतन]